अप्रैल-जून 2024

अनुनाद ७

साहित्य के जन-सरोकारों की ऑनलाइन त्रैमासिक पत्रिका

संपादक

शिरीष मौर्य

मेधा

अनुक्रम

- इस अंक के रचनाकार / पृ. 2
- कविता

1. हिन्दवी'कैंपस कविता'/पूजा गोस्वामी, अंजलि नैलवाल, हिमांशु विश्वकर्मा / पृ. 6
2. अब वे प्रेम के मकबरे बन चुकी हैं / स्वप्निल श्रीवास्तव / पृ. 15
3. इस हँसी पर कोई बंदिश नहीं लगा सकता/मनोज शर्मा/ पृ. 20
4. मज़दूर के पसीने का बहना ही उसका सबसे बड़ा गहना है!/ राजेश पाठक / पृ.24
5. अभी फिलहाल वे पर्वतीय जीवन की दुश्वारियों पर बात कर रहे हैं /भूपेन्द्र बिष्ट/ पृ.25
6. मिट्टी से रोटी नहीं न बनती खाली चूल्हा बनता है/ इरा श्रीवास्तव/ पृ.28
7. मेरी प्रार्थनाओं की वजह से वह बना रहा ईश्वर/ रीना शाही/ पृ.32
8. आकंठ प्रेम में डूब कर तुम्हें ऐसा ही पाती हूं/तुलसी छेत्री/ पृ.33
9. जैसे नींद सुनती है सपनों को जैसे एकांत सुनता है अकेलापन/ ऋतु डिमरी नौटियाल / पृ. 34
10. मन इच्छाओं का ज़ख़ीरा है देह उसके लालसाओं के बोझ से दबा मासूम /सुमन शेखर / पृ.37
11. सदा से ही तमाम जीवनों के लिए अपना जीवन जीती रही है इजा/ गिरीश अधिकारी / पृ.42
12. फिलीस्तीनी युवा कवि हिंद जूडा की कविता/ अनुवाद एवं प्रस्तुति : यादवेन्द्र/ पृ.45
13. चार्ल्स बुकोवस्की की कविताएं / अनुवाद एवं प्रस्तुति - योगेश ध्यानी/ पृ. 46
14. सलगादो मारंय्यों की कविताएँ/ अनुवाद एवं प्रस्तुति : शुभा द्विवेदी / पृ.49

- कहानी

15. रधुली /अंजलि नैलवाल / पृ.51
16. आशियाना/ पूजा गुप्ता / पृ.54

- आलोचना/ समीक्षा

17. 'एक देश बारह दुनिया' रिपोर्ताज के बहाने विकासात्मक विरोधाभास पर एक निगाह/ दीक्षा मेहरा / पृ.59
18. समय की विकृतियों का दस्तावेज़/कृष्ण नीरज / पृ.72
19. हिन्दी ग़ज़ल में अंग्रेजी के तत्व/ ज़ियाउर रहमान जाफ़री/ पृ. 76

- कथेतर

20. हिन्दी साहित्य और न्यू मीडिया /श्रीविलास सिंह से मेधा नैलवाल का साक्षात्कार / पृ. 82

इस अंक के रचनाकार

पूजा गोस्वामी – कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल से दुष्यंत की ग़ज़लों पर शोधरत।

अंजलि नैलवाल - कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल से अंग्रेजी, परास्नातक दूसरे वर्ष की विद्यार्थी। विश्वरंग, अनुनाद में कविता, कहानी, अनुवाद प्रकाशित ।

हिमांशु विश्वकर्मा - कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल से विद्यासागर नौटियाल के कथासाहित्य पर शोधरत। लोक-कलाओं पर कार्य, अनुनाद पर कविताएं प्रकाशित

स्वप्निल श्रीवास्तव - वरिष्ठ साहित्यकार।

कविता संग्रह: ईश्वर एक लाठी है, ताख पर दियासलाई, मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए, जिन्दगी का मुकदमा, जब तक है जीवन, घड़ी में समय, चयनित कविताएँ।

कहानी संग्रह: एक पवित्र नगर की दास्तान, स्तूप महावत तथा अन्य कहानियाँ, दूर के मेहमान, जैसा मैंने जीवन देखा तथा लेखक की अमरता (संस्मरण) की किताब के अलावा ताकि स्मृति बची रहे (मंगलेश डबराल के बारे में किताब का सम्पादन), एक सिनेमाबाज की कहानी (वृत्तांत), कवि की अधूरी कविता (उपन्यास)

सम्मान और पुरस्कार कविता के लिए भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार, फिराक सम्मान, केदार सम्मान, शमशेर सम्मान के साथ रूस का अंतरराष्ट्रीय पुश्किन सम्मान।

रूसी, अंग्रेजी, नेपाली, बंगाली, मराठी, पंजाबी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में कविताओं के अनुवाद । फिलहाल फैज़ाबाद में स्थायी निवास और लेखन

मनोज शर्मा - वरिष्ठ साहित्यकार।

कविता संग्रह : यथार्थ के घेरे में, य़कीन मानों मैं आऊँगा, बीता लौटता है, ऐसे समय में, मीलपत्थर बुला रहा है

राजेश पाठक - झारखंड सरकार में कार्यरत । विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

कविता संग्रह – पुकार

भूपेन्द्र बिष्ट - धर्मयुग, दिनमान, रविवार, साप्ताहिक हिंदुस्तान, कादम्बिनी, सरिता, इंडिया टुडे, जनसत्ता सबरंग, हंस, वागर्थ, बया, कथादेश, पाखी, अहा! जिंदगी, वर्तमान साहित्य,व्यंग्य यात्रा, आधारशिला, पहल, उत्कर्ष, कृति बहुमत, समकालीन तीसरी दुनिया, दशकारंभ, पुनश्च:, संवेद, लमही, शब्द सत्ता तथा उत्तरा, पहाड़ आदि पत्रिकाओं समेत कई अखबारों में लेख, गीत/ ग़ज़ल, कविताएं एवं पुस्तक समीक्षायें प्रकाशित। पंजाबी भाषा में कवितायें अनूदित-प्रकाशित। आकाशवाणी केंद्रों से प्रसारण।
"जानकीपुल", "समालोचन" और "अनुनाद" वेब पत्रिकाओं में कविताएं और आलेख।
कुछ कविता संकलनों में कविताएं. पोएट्री सोसाइटी (इंडिया) प्रतियोगिता 1983 में कविता चयनित तथा 'सार्थक कविता की तलाश' संकलन में संकलित.
एक कविता संग्रह "गोठ में बाघ" (अंतिका प्रकाशन)' 23 में प्रकाशित।
उत्तर प्रदेश सरकार में उ. प्र. गन्ना सेवा अधिकारी (प्रथम श्रेणी) पद से निवृत.

इरा श्रीवास्तव – वागर्थ, समकालीन भारतीय साहित्य, परिकथा, अनुनाद में कविताएं प्रकाशित।

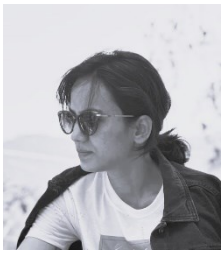

रीना शाही – विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।
कविता संग्रह – जंगली फूल

तुलसी छेत्री - विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

ऋतु डिमरी नौटियाल - विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

सुमन शेखर - लेखन के साथ ही रंगकर्म और अभिनय में गहरी रुचि।

नाटक लेखन- N.U._E., OTHELLOSSS, महलीला, चिराग़, इंतज़ार, कफ़स उदास है यारों आदि का लेखन

नाटक- बेग़म का तकिया, पश्मीना, परतें, महारथी, पगला घोड़ा, महालीला, ताजमहल का टेंडर, संटू जी कहिन, अंधेर नगरी चौपट राजा, लक्ष्मी, दंड बैठक कसरत इत्यादि में अभिनय। ओथेलोज़ और महालीला का लेखन, महारथी, महालीला सहित कुछ नाटकों का निर्देशन भी।

कुछ फ़िल्में- sadist, वेपर, ख़्वाबिदा, लाइफ टाइम डेथ, लाउडस्पीकर (अवार्ड विनिंग), छिछोरे, शेड्स ऑफ रेड(अवार्ड विनिंग), स्माइल वरसेज़ स्माइलीज(अवार्ड विनिंग), दिल्ली पिकेट ड्यूटी, व्हाट्सअप यूनिवर्सिटी, फर्स्ट लव, अनचाहा, प्राची,

चिट्ठी, इत्यादि में भी अभिनय, कुछ शॉर्ट फ़िल्मों का लेखन और निर्देशन ।

दिल्ली आकाशवाणी से लाइव प्रसारण, साथ ही कुछ कविताओं, कहानियों और फिल्मों में आवाज़।

प्रकाशन-वागर्थ, आलोचना, सरस्वती पत्रिका, स्वाधीनता शारदीय विशेषांक, राजस्थान पत्रिका, बहुमत, कृति बहुमत, मधुमती, हिन्दी चेतना, कथाक्रम कौशिकी सहित कई पत्रिकाओं में कविताएँ/कहानी प्रकाशित।

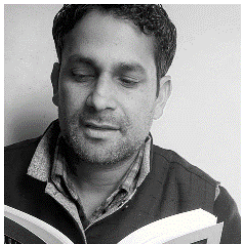

गिरीश अधिकारी - विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

कविता संग्रह – किस्साण

यादवेन्द्र -घने अंधकार में खुलती खिड़की, अनुवाद तंग गलियों से भी दिखता है आकाश (विश्व साहित्य से स्त्री कथाकारी की चुनी हुई कहानियों 2018), स्याही की गमक (विश्व साहित्य से स्त्री कथाकारों की चुनी हुई कहानियाँ 2019) संपादन कथादेश (विश्व साहित्य की प्रमुख लेखिकाओं की रचनाओं पर केंद्रित अंक मार्च 2017)

योगेश ध्यानी - वागर्थ,आजकल, परिन्दे, कादम्बिनी, कृति बहुमत, बहुमत, प्रेरणा अंशु, वनप्रिया, देशधारा आदि पत्रिकाओं मे रचनाएं प्रकाशित। पोषम पा, जानकीपुल, इन्द्रधनुष, अनुनाद, लिखो यहां वहां, मलोटा फोक्स, कथान्तर-अवान्तर, हमारा मोर्चा आदि साहित्यिक वेब साइट्स पर कविताएं तथा लेख प्रकाशित प्लूटो तथा शतरूपा पत्रिकाओं मे बाल कहानियां प्रकाशित नोशनप्रेस की कथाकार पुस्तक मे सन्दूक कहानी चयनित, एक अन्य कहानी गाथान्तर पत्रिका मे प्रकाशित,पोषम पा पर कुछ विश्व कविताओ के अनुवाद प्रकाशित, कृति बहुमत तथा परिन्दे पत्रिकाओं मे विश्व कहानियों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित **कविताओं की किताब 'समुद्रनामा'** दिसम्बर 2022 में प्रकाशित हुई है।

शुभा द्विवेदी - ए.आर.एस.डी.कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य में सहायक प्रोफेसर; भारतीय भाषा साहित्य में रुचि; हिंदी से अंग्रेजी में भी अनुवाद करती हैं। उन्होंने पोएटक्रिट,क्रिएटिव राइटिंग एंड क्रिटिसिज्म, हेलिकॉन व्यूज,डायलॉग, अधिगम, पॉइंट्स ऑफ व्यू और द क्राइटेरियन में अपने शोध पत्र प्रकाशित किए हैं। उनके अनुवाद

समकालीन भारतीय साहित्य, काव्य भारती,पोएटक्रिट, कॉन्स्पेक्टस और अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

पूजा गुप्ता - विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

दीक्षा मेहरा - कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल में अतिथि शिक्षक। विभिन्न पत्रिकाओं आलोचना, शोध आलेख प्रकाशित।

श्री कृष्ण नीरज - वर्तमान में 'प्रियंवद के कथा साहित्य' पर हिंदी विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ में शोधरत। पाखी, वनमाली कथा समेत विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कविताएं एवं समीक्षाएं प्रकाशित

ज़ियाउर रहमान जाफ़री - खुले दरीचे की खुशबू (हिन्दी ग़ज़ल),खुशबू छू कर आई है (हिन्दी ग़ज़ल),परवीन शाकिर की शायरी (हिन्दी आलोचना),ग़ज़ल लेखन परम्परा और हिन्दी ग़ज़ल का विकास (आलोचना),चाँद हमारी मुट्ठी में है (हिन्दी बाल कविता), मैं आपी से नहीं बोलती (उर्दू बाल कविता),लड़की तब हँसती है (संपादन)

पुरस्कार : बिहार शताब्दी सम्मान, बिहार सरकार का आपदा प्रबंधन लेखन पुरस्कार

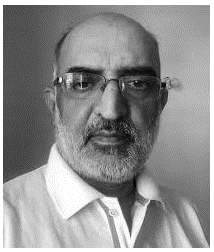

श्रीविलास सिंह - हिंदी के कवि, कहानीकार तथा अनुवादक हैं **कविता संग्रह** : कविता के बहाने और रोशनी के मुहाने तक **कहानी संग्रह** : सन्नाटे का शोर और अनूदित कहानियों का संग्रह आवाज़ों के आर-पार नोबेल पुरस्कार प्राप्त कवियों की कविताओं का हिंदी अनुवाद अंधेरों की खामोशी के बीच, पैगम्बर (उपन्यास)/ख़लील जिब्रान।

****

****

****

हिन्दवी 'कैंपस कविता'

रेख़्ता फाउन्डेशन हिन्दवी और महादेवी वर्मा सृजन पीठ, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल के सहयोग से आयोजित कैंपस कविता कार्यक्रम (06 जून 2024) में हिन्दवी द्वारा पुरस्कृत कवियों की आयोजन में पढ़ी गई कविताएं –

पूजा गोस्वामी

आदमीनामा

यादों की दहलीज पर
खड़ा हो
भीतर झांकता आदमी
अधूरी इच्छाओं की आग में
झुलसकर चलता आदमी।

हर बार
खाकर धोखा
उम्मीद की कील पर
तसल्ली के 'जुमले' टांगता आदमी।

धर्म के मकानों की
आड़ में छिपे हुए -
किसी आदमखोर की तरह

जबड़ा खोले
दरवाज़े के पीछे
आदमी का इंतज़ार करता आदमी।

मगर दर्पण में
खुद को नग्न देख, झेंपकर
शालीनता के चिथड़ों से
ख़ुद को ढकता आदमी।

जलते जनतंत्र की
आग में रोटियां सेंकता आदमी,
किसी ईमान के
चोर दरवाज़े से
ईमानदारी की
चोरजेबों को भरता आदमी।

भूख, गरीबी
बलात्कार
किसान आत्महत्या पर
आत्मीयता दिखा फिर निष्क्रिय होकर
निकम्मी आदतों की
चादर ओढ़े सोता आदमी।

वही चिरपरिचित
आदमी रहता है मुझमें
ऐसा एक आदमी

रहता है तुझमें।
***

पहली बार

चारों ओर फैली हुई
स्थिर और कठोर चट्टानों की दुनिया के
बीच
एक आदमी
झाड़ियों के सूखे डंठल बटोर कर
आग जलता है।

चट्टानों के चेहरे तमतमा जाते है
आदमी उन सबसे बेखबर
टटोलता हुआ आपने आपको
उठता है और उनमें से
किसी एक पर बैठकर
अपनी दुनिया के लिए
रोटियां बनाता है।

आग तेज़ होती है
चट्टानें पहली बार
कुछ बनाता हुआ देखती हैं
अपने सामने।

अंत में

आदमी उठकर चल देता है अचानक
उसी तरह बेख़बर,
चट्टानें पहली बार आपने बीच से
कुछ गुजरता हुआ
महसूस करती हैं।

ईश्वर की ऐनक

तुमसे बातें करना
मुझे खोजी बना देता है
मैं खोजता हूं
शब्द
भागने लगता हूं
अप्रत्याशित ध्वनियों के पीछे
तलाशता हूं
उपमाएं
सुधारने लगता
अपनी भाषा का व्याकरण।

तभी मेरी हथेली पर
उग आती हैं
हरी बेलें
तुम्हें पत्र लिखने के
विचार से ही मात्र
मेरे हृदय के

दर्रों से उड़ जाते हैं
तितलियों के अनेक जत्थे
उस खोखले मैदान की ओर
जहां बच्चे बुनते है बसंत।

तितलियां प्रेमियों की
मृत इच्छाएं होती हैं
मैंने सुना था उस बूढ़ी हव्वा से
जो कहती है -

‘औरत गढ़ी जाती है ’
जितनी आज़ाद वह
दुनिया की आखों के पीछे रहती है
उतनी आज़ादी से
पृथ्वी खो सकती है
अपना गुरुत्वाबल
आज़ाद हो सकती हैं
पुरानी बरगद की जड़ें
और पहाड़ खुद को उखाड़ फेंक सकते है
कहीं दूर,
एक नहर निकलकर
बह सकती है आदम की हथेलियों से।

उस नहर-सी तुम
ईश्वर की हथेली से फिसलकर अचानक आ
गिरी

मेरे भीतर।
जब मैं
भर गए तिमिर से जीवन में
ढूंढ रहा था एक छड़ी।
छड़ी—
जिसके सहारे पृथ्वी चल सके
जा सके किसी हसोड़ आदमी की
बालकनी में धूप सेंकने।

रोशनी —
जो तुम्हारे बालों से छनकर आती है ,
बस उतनी ही रोशनी से
पिघल सकती है
बर्फ की वो चादर
जिसके नीचे दबा है
ईश्वर का ऐनक।
***

कौआ

चट्टान के ऊपर बैठा मैं
थका हुआ भूखा हूं
और वहीं पास ही
बैठा एक कौआ;
जिसकी चोंच में
एक टुकड़ा है रोटी का

उसका ये हिस्सा
छीना हुआ है
सोचता हूं इधर आए
पर ——---
ना मैं कौआ हूं
ना मेरी चोंच है,
आख़िर किस
नाक-नक्शे का आदमी हूं
जो अपना ही हिस्सा
छीन नहीं पाता।
***

नेपथ्य से दस्तक

खोई हुई
विचारों में आपने ही
खोजती हूं अपना ही हाथ
तभी नेपथ्य से
देता है दस्तक कोई।

फिर पूछता मुझ ही से –
तू कौन है?
क्यों है यहां?
निरर्थक इस जीवन का तेरे
शेष कुछ भी
अर्थ है क्या?

ध्वनि यह
चिरपरिचित
सवाल यह अनंत काल से
मानो बहते हो रक्त में
छाप जिनकी पड़ी है
मेरे पीठ पर,
छाप—
जो धंसी हुई है मेरी पसलियों तक।

सवाल जो कल तक
केवल थे शब्द मात्र
अनजान थी मैं
जिनसे अब तक
उन शब्दों के
आज आकृति-चित्र बनते है।

और वहीं
अंतर में छिपी बुढ़िया
बजती है बीन
सहसा यह क्या!?!
छमछम..... छमछम..... छमछम.....
कोई नाचता है
अरे!!
यह कौन???
मेरे अंतर की पुकार!!!
आज मानते है उत्सव

नवसृजन की उदय–वेला का।
***

अंजलि नैलवाल

धरती पर आसमान

सोचो अगर होता आसमान धरती पर,
तारों को टांगते
अपनी अपनी खिड़कियों पर बच्चे
गिन पाते उन्हें,
जा पाते चंदा मामा के घर और कहते
पुए पकाने को, लोरी सुनाने को,
नानी से मिलवाने को।

स्त्रियां बनाती रंगोलियां तारों की,

उनके छोटे छोटे टुकड़े बनवाकर गठाती उन्हें अपनी पायलों में, नथनियों में

प्रेमी सचमुच ला पाते चुनकर तारे
अपनी प्रेमिकाओं के लिए,
सजाते उनके बालों में
और अपने प्रेम को चमकता हुआ देख पाते उन्हें

हर कोई छू पाता आसमान को, चल पाता उसकी छाती पर
गिरता पड़ता अगर तो भी

सम्हालने के लिए
बांहे बिछाकर आसमान ही होता

तारों का बिस्तर होता, सिरहाने अम्मा के झिलमिल झिलमिलती झिलमिलाहट उसकी कमज़ोर आंखों को बुझने न देती,
वह भी जागती रात भर
देखती अपने तारों को
आसमान के दूसरे तारों के साथ
चमकता हुआ।

सोचो अगर होता आसमान धरती पर
तो हर कोई भागता हसरतों के पीछे
पकड़ पाता उन्हें कसकर अपनी मुट्ठी में
उसी जगमगाहट के साथ।

सोचो अगर होता आसमान धरती पर तो

बिना किसी से छीने
हर किसी का अपना
थोड़ा थोड़ा आसमान होता

इस विपुला पृथ्वी का अलग
एक गुरुत्व होता
थोड़ा अलग विज्ञान होता।
***

पहाड़ का रैबासी

पहाड़ में एक गांव है, गांव में घर है और
घर की चौखट पर बैठी हुई अम्मा।

अम्मा की आंखे हैं, आंखों में नाचता आंगन है और
आंगन में अनाज है, डंगर हैं,
नाती पोते हैं, और आस है
इन सबके लौट आने की ।

एक शहर है, शहर में पहाड़ जैसे सपने हैं
जीवन है और हमेशा के लिए बांध लेने वाली
जिम्मेदारियां

एक पहाड़ का रेबासी है
जो इन पर्वत और मैदानों के बीच
नदी होता जा रहा है
जो अपने उद्गम पर
लौटना चाह रहा है।

बहता, बिखरता, टूटता

न जाने किस ओर बढ़ता जा रहा है।
बूंद बूंद में पहाड़ का प्रतिबिंब है, और
ये पहाड़ को खोता जा रहा है।
अम्मा की आस डुबा दे या
सपनों का पहाड़ तोड़ डाले

यह समझ नहीं पा रहा है।
अपनी बिखरी हुई धाराओं को समेटकर
फिर से पूरा होना चाह रहा है।

सूखकर कतरा कतरा
ये हिमालय होना चाह रहा है

वो कठिन बनावट में सरल हृदय
पिघलता जा रहा है
ये पहाड़ों का रैबासी
नदी होता जा रहा है।
***

हिमांशु विश्वकर्मा

अनुनाद पर पूर्व में प्रकाशित कविताओं का पाठ

नदियाँ और बेटियाँ

(19 वर्षीय हिमानी, एक सुदूर पहाड़ी ग्रामीण इलाके से आयी लड़की, जो स्नातक के लिए महिला महाविद्यालय हल्द्वानी प्रवेश लेती है. साल भर खेल के क्षेत्र में जीवन सवारने लक्ष्य को लेकर महाविद्यालय के अनेकों प्रतियोगिताओं में प्रतिभाग करती रही. बैटमिन्टन में उच्चस्तर की सक्ष्यम खिलाड़ी होने पर भी जिसके बेहतरीन खेल, भविष्य और प्रेरणा को आंतरिक गुटबाज़ी और प्रशासनिक ठगबाजों ने आगे नहीं बढ़ने दिया.)

जैसे सुदूर पहाड़ों से आती हैं नदियाँ
ऊँचे पर्वतों
ताज़ी हवा और
हरे पत्तों पर बिसरी ओंस की बूंदों को
उलांघकर मैदानों तक

ठीक वैसे ही हिमाल की बेटियाँ
उलांघकर आती हैं मैदानों पर
असंख्य देहलियाँ
अनगिनत भेड़ें
अलौकिक बुरूंश[i] और केराल[ii] के पुष्प.

मैदानों में आकर
नदियाँ सींचती हैं
तीव्र-निरंतर और नीरस
पिंजरों में बंद
शहरों के फड़फड़ाते ख्वाबों को

फिर भी मोड़ दी जाती उसकी दिशा,
कैद कर लिया जाता है
उसका संवेग,
बदल दिया जाता उसका रंग
ओर
उसकी देह में ठूंसी जाती है
तमाम सभ्यताओं की गंध,

मैंदानों पर आकर
मेहनत और लगन से

बेटियाँ खींचती हैं
अपने सपनों की लकीरें

ईजा-बाज्यू[iii] और दाज्यू[iv] भेजते हैं दुआएं
भेजते हैं
काफल[v], ककड़ी, बिरुड़े[vi] और घी

बेटियां जब बढ़ने लगती हैं
शहर में
अपने भविष्य के लिए
तभी
खींच लिए जाते हैं
उसके हाथ
हाशिये पर रख दिए जाते है उसके ख़्वाब
पूछे जाते हैं अनगिनत सवाल

निर्दोष जब लड़ती है
हक़ की लड़ाई
बोला जाता है गंवार,
पढ़ाई जाती हैं संस्कार और मर्यादाओं की पोथियाँ

बेटियों को सताया जाता है
दी जाती हैं
गलियां
मैदानों पर आने के लिए

उनके क़दमों को बाँध दिया जाता है
तोड़ दी जाती सीढ़ियों पर चढ़ने की आश
मोड़ दिए जाते हैं उनके रास्ते

छीन लिया जाता है उनसे
उसके जीवन का
हौसियापन[vii].

***

भ्यास

(पहाड़ को छोड़ कर शहर में बसे ठेठ पहाड़ियों के लिए)

पहाड़ के सयाणों[viii]
खुश रहो,
तुम्हारी जमीनें खरीदी जा रही हैं अब अच्छे दामों में

लेकिन
शर्त लगा लो
उस पैसे से तुम
भाबर में खरीदे प्लॉट की नींव को
दौड़ती सड़क के बराबर भी नहीं कर पाओगे,
और
याद रखना
एक दिन तुम्हारी ही नस्लें
तुम्हारे नाती-नातिनें, पोत-पोतियाँ
तुमको देंगें गालियां,
थूकेंगे तुम्हारी करनी पर

कोसेंगे तुमको कि
उस टैम[ix] तुमने
जमीन, जंगल और पानी नहीं बेचा होता तो गति[x]
ऐसी नहीं होती

हम ठैरे मिट्टी से अन्न उपजाने वाले,
पानी से घराटों को गति देने वाले,
पेड़-पहाड़ों और जंगलों में घूमते जंगल चलाने वाले

हाय !
तुमने झूठी ठसक के चक्कर में पीढ़ियाँ खराब कर
डाली
आधा रह गया तुम्हारा संसार,

गांव में सरकारी सैप[xi] हो गए
और शहर में भ्यास[xii] पहाड़ी.
***

ब्यू

(मेरे हिमाल के लिए)

जहां हिमाल से दूर
शहर काट रहा होता है
रात को दिन की तरह
उम्दा टेक्नोलॉजी और
स्वयं को बेहतर दिखवाने की होड़ में
लांघता है बैठे-बैठे
सफल होने के फॉर्मूले
नेक्स्ट वीकेंड को जबरदस्त रोमांच से भरने के लिए
करता रहता है प्लान,
उसी समय उसका मन जूझता है
निरंतर उस जूते की तरह
जो महंगे शौक में खरीद तो लिया है
पर
पैर के तलवों में बराबर चुभन
बनाये हुए है
काटता है उसको
इनफीरीयोरिटी काम्प्लेक्स
चका-चौंध,
बाज़ारवाद
और

पूंजी की माया में लिप्त भ्रम

उसी भेड़चाल और रैट रेस से थोड़ा अलग-थलक

गाँव में

एक पिता सुबह-सुबह
घुघूत[xiii], कफुआ[xiv], गिणी[xv], टेपुल्लिया[xvi]

हाय!
पता नहीं किन-किन
पक्षियों और भौरों की गुनगुनाहट से साथ उठकर
गिलास भर चहा खाकर
हल और हौल[xvii] जभाँधूत[xviii] कुमथलों[xix] पर
टिकाकर
दो बरस की
चेली[xx] को साथ में लेकर
छिड़कता है अपने खेतों में
पुश्तैनी भकारों[xxi]-फॉउलों[xxii] में रखा अलौकिक ब्यू
बोता है धरती के सीने में गेहूँ
न्योली[xxiii] की धुनों के साथ करता है
फसकबाजी,
दबाता है होंठों और दांतों के बीच मधु का नरम
डोज
और
माँ
जो कि अभी पुनः माँ बनने वाली है
रोज धार चढ़ कर लाती है

एक पुसोलिया[xxiv] हरी घास
गोठ[xxv] की धिनाली[xxvi] के लिए चुनती है

दुधिलपात[xxvii], बांजपात[xxviii] और सालम[xxix]

काटती लाती है अपने हिस्से का माँगा[xxx]
बतकों[xxxi] में निश्चिन्त कहती है
'बुर जन मानि हाँ'[xxxii]
न्योली गाती हुई पहाड़ की छाती पर

उड़ेलती है
गोबर के दर्जनों भर डोके[xxxiii]
और फोड़ती डालती है अंसख्य स
मिट्टी के डाले[xxxiv]....
आने वाली
नई पीढ़ी के लिए

i सुर्ख फूलों का राज्यवृक्ष (Rhododendron)
ii कचनार (Bauhinia Variegata)
iii माता-पिता
iv बड़ा भाई
v ग्रीष्मकाल में 4000-6000फीट पर लगने वाला पहाड़ी जंगली फल (Myrica Esculena) जिस पर अनेकों लोककथायें हैं
vi स्थानीय पांच सात तरह की उगने वाली दालें
vii खुशमिजाज / बिंदासपन
viii समझदार लोग
ix समय
x बुरा समय होना
xi साहब
xii भुस्स / सहज / बुद्धू
xiii बीज
xiv फाख्ता
xv चैत के महीने में बासने वाली एक पहाड़ी कोयल
xvi गौरैया

xvii हिमालयन बुलबुल
xviii दो बैलों का जोड़ा
xix अड़ियल/ ताकतवर
xx कंधे
xxi बेटी
xxii मिट्टी और गोबर से लीपा गया बड़ा लकड़ी का बक्सा
xxiii तांबे की घड़ा

xxiv एकल रूप से मुख्यतः विरह, विलाप, याद, प्रेम, सुख या दुःख में फूटा गीत
xxv रिंगाल/बांस से बना एक शंकुनुमा डलिया जिसको पीठ पर लादकर घास/गोबर/मिट्टी आदि इक्कट्ठा कर एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता है
xxvi गाय-बकरियों-भैसों को रखने का स्थान
xxvii दूध, दही, घी, छांछ
xxviii एक पेड़ जिनको गाय-भैसों को खिलाने से उनका स्वास्थ्य और दूध बढ़ता है
xxix ओक के पत्ते
xxx जंगली घास
xxxi घास उगने की जगह
xxxii बातें / गप्पें
xxxiii कृपया बुरा मत मानना
xxxiv पीठ पर लादे जाने वाली शंकुनुमा डलिया
xxxv बड़े-बड़े टुकड़े

***

अब वे प्रेम के मकबरे बन चुकी हैं

स्वप्निल श्रीवास्तव की कविताएँ

अगर

अगर भोजन करते हुए तुम्हें
इस बात की शर्म आए कि दुनिया में
करोड़ों लोग भूखे हैं
तो समझ लो कि तुम्हारे भीतर
मनुष्य होने के लक्षण प्रकट
हो रहे हैं

अगर गला तर करते हुए तुम्हें
प्यासे लोगों का ध्यान आए तो
मान लो कि तुम्हारे आँख का पानी
बचा हुआ है

अगर किसी फूल को देखकर
तुम्हारा चेहरा खिल जाये
तो यह इस बात का प्रमाण है कि
तुम्हारा सौन्दर्य बोध जीवित है

किसी स्त्री का दुख देख कर अगर तुम
बिगलित हो उठो तो यह
तुम्हारे भीतर की संवेदना का
साक्ष्य है

अगर तानाशाह की करतूतों पर
तुम्हें गुस्सा आए तो यह इस बात
की तसदीक है कि तुम्हारे भीतर
एक नागरिक की योग्यता मौजूद है

नराधमों

नराधमों !
दुनिया की सारी नदियां दुह डालो
लूट लो सारे खनिज
आसमान को बारूद के बादलों से
भर दो
उस शाख को काट डालो
जिस पर बसा हुआ है
तुम्हारा घर

जब पृथ्वी पर सब कुछ ख़त्म
हो जाएगा तो तुम्हें लगेगी भूख तब तुम
डॉलर चबा कर अपनी भूख मिटाना
मनाना अपनी वीरानी का जश्न

शवों के पहाड़ों पर खड़े होकर सोचना कि
तुम ऐसे विजेता बन गये हो जिसके पास
शासन करने के लिए नही बची है प्रजा

दुनिया के आदमखोरों
तुम्हारा सर्वनाश हो

मशहूर होना

जिंदगी भर पढ़ने लिखने के बावजूद
मुझे कोई नहीं जानता

लेकिन एक कत्ल के बाद
वह रातोंरात शहर में मशहूर हो गया

बहुत से लोग डर कर उसके
दोस्त बन गये
उसके दुश्मनों ने उसके सामने
आत्मसमर्पण कर दिया

उसे हर समारोह में बुलाया
जाता है
वह हर सभा का स्थायी सदस्य
बन गया है

राजनेता उसके पास आने लगे हैं
अपने दल में शामिल करने को
लालायित हैं

एक मैं हूँ अपने कंधे पर
साहित्य का झोला लिए हुए
घूम रहा हूँ
कोई मुझे जगह नही देता

एक वह है जिसके लिए लोग
अपनी जगह खाली कर रहे हैं

जब हम बूढ़े होने लगते हैं

जब हम बूढ़े होने लगते हैं
तो जीवन के सबसे कोमल
दृश्य याद आते हैं

मुझे याद आती है माँ की सखी
जो मुझसे कहती थी कि
मैं भी तुम्हारी माँ हूँ

वह सिर्फ़ कहती नही थी
उसका सुबूत भी देती थी
मैं जरा भी बीमार पड़ता था
वह मेरी तीमारदारी में लग
जाती थी

जब उसकी मृत्यु हुई मुझे
माँ के खोने का दुख मिला

बहन की सहेलिया भैया भैया
कह कर चहकती थी
उनकी शरारतें और चपलता
देखते बनती थी

राखी के दिन वे मेरी कलाइयाँ
रंग बिरंगे धागों से भर देती थी
और ढीठ होकर नेग मांगती थी

जब वे ब्याह में विदा होती थी
तो मैं बहुत रोता था
और वे भी मेरे कंधे भिगो
देती थी

वह सहपाठी लड़की याद आती है
जिससे प्रेम का इजहार करने में
महीनों बीत गये थे

इसी बीच दूसरा लड़का उसके जीवन में
दाखिल हो गया था

उस समय मुझे अपनी नाकामी पर
बहुत शर्म आयी थी

अंधेरे में एक बेधड़क के साथ
देखी गयी फिल्म को कभी नही
भूल सकता जिसमें मुझे स्पर्श का
पहला स्वाद मिला था

एक एक करके प्रेम की अनेक
जगहें याद आती हैं
अब वे प्रेम के मकबरे बन
चुकी हैं

यथार्थ

अंतिम समय आया तो
तो सबसे पहले उनकी किताबें

बेच दी गयी
जिसे जतन से उन्होंने जिंदगी भर
इकट्ठा किया था

आलमारी की उस खाली जगह पर
रखी जाएगी उनकी फ़ोटो

उसके बाद उनके पासबुक की
तलाशी ली गयी और रकम को
कब्जे में लिया गया

जिन्होंने उनसे उधार लिया था
उन्हें तगादा भेजा गया

फिर उनकी सन्दूक का ताला तोड़ा गया
उसमें कुछ फ़ोटो और खत बरामद
हुए

पत्नी ने कहा – बहुत दुष्ट था यह आदमी
उम्र भर इस रहस्य को छिपाता रहा

बच्चों ने कहा – मम्मी –पापा के बारे में
अदब से बात करों , वे आपसे बहुत
प्यार करते थे

कितना बदल गया है हमारा यथार्थ
उसमें स्मृति के लिए बहुत कम
जगह बची है

छिप छिप कर मिलना

छिप छिप कर मिलना
है कितना सुंदर सपना ।
हो कोई अनजान सफर
कोई कहे कि रूकना ।
तुम ठगहारे जन्म जन्म के
सोच समझ कर ठगना ।
दिल मेरा वीरान नगर है
भूल गया कोई बसना ।
तुम जब देखो कोई मंजर
मैं तेरी पलकों का उठना ।

तुम नदी मैं तट हो जाऊं
देखे कगार का कटना ।
यह दर्पण तो झूठ बोलता
मुझे देख कर सजना ।
यह तो काँटों भरी डगर है
जरा संभल कर चलना ।
यह दुनिया धोखे की मंडी
वो मेरी प्रिय छलना ।

देवानंद

जब मैं देवानंद की फिल्मे देखता हूँ
तो मुझे अपने मरहूम दोस्त की
याद आती है

देवानंद की तरह नही थी

उसकी शक्ल सूरत लेकिन वह
देवानंद के अभिनय और अदाओ की
बखूबी नकल करता था

वह देवानंद की तरह टेड़ा और झुक कर
चलता था

आपको जानकर हैरत होगी कि उसने
कि देवानंद की तरह दिखने के लिए
उसने किनारे के दांत तुड़वा दिए थे
वह उसकी तरह बुलबुली रखता था
और उसे सजाता सँवारता रहता था

देवानंद की तरह बात करता था

हम उसे टोकते थे कि तुम देवानंद नही
प्रेम हो - तुम हमारी तरह क्यों नही
बात करते
लेकिन वह बाज नही आता था

मासूम और दिलफेक तबीयत के दोस्त
की शोहरत हमारे कस्बे में
देवानंद की तरह थी

जब हमें
मजा लेना होता था
उससे देवानंद के संवाद सुनते थे
और वह देवानंद के जीवन के तमाम
किस्सों के साथ देवानंद का अभिनय

करता था

आज न देवानंद है और न मेरा प्यारा दोस्त
लेकिन उस यादों का क्या कीजै
जो हमारी आँखों में बरसती रहती हैं

कभी कभी उन दोनों को याद करने के लिए
देवानंद की फिल्में देखता रहता हूँ

जो मिला

जो नही मिला
उसका दुख क्या
जो मिला है वह क्या
कम है

हमें मिली है पृथ्वी
समूचा आकाश और
तारामंडल
हमें मुफ़्त मिली है
चांद सूरज की रोशनी
और फेफड़ों में साँस
भरने के लिए हवा

हमें मिले हैं पर्वत
नदिया आकाश
समुन्दर और बारिशें

हरे भरे जंगल और उसमें
गीत गाते परिंदे
मिले हैं

तुम्हें और क्या चाहिए
लालचियों ?

स्वीमिंग पुल

यह तालाब नही
मेरा स्वीमिंग पुल है
जहां मैनें तैरना सीखा था
और शहर में आकर
डूंब गया

यह तालाब नही
छोटा सा समुन्दर है
कंकड़ फेको तो लहरे
उठने लगती हैं

इस तालाब में मैनें
मछलियों से दोस्ती की थी
उनसे घर बनाने की तरकीब
सीखी थी

इस तालाब में मुझसे लंबी
दिखती है मेरी परछाई

मैं यह सोच कर
चौंक जाता हूँ
क्या मैं सचमुच बड़ा हो
गया हूँ ?
***

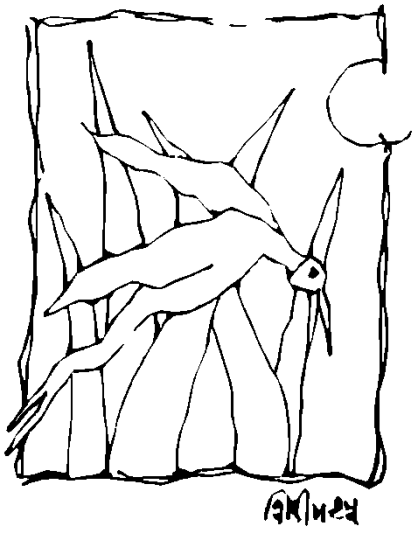

इस हँसी पर कोई बंदिश नहीं लगा सकता

मनोज शर्मा

आत्मकथ्य

जिस रात चौबारे पर उतरी चाँदनी
उस गांव में एक नयी किलकारी गूँजी
चीन के हमले से करीब साल भर पहले की बात है यह
कहते हैं बहुत मन्नतों के बाद
ऐसी रात फूटी थी
जिसने अपने नैपथ्य के आंचल में फफोले छिपा लिए
अगले रोज़ , देवता मुस्काते मिले
गांव की एकमात्र हट्टी के मालिक ने
रंग - बिरंगी झंडियां निकाल बाहर रख दीं
कि अभी इनके लिए खरीददार आएंगे
सरपंच ने हुक्का छोड़ , शंख बजाया
यह कल्पना से बाहर का ठोस यथार्थ रहा
जो मोहक सपने की मानिंद लुभावना था
इस उटांग - पटांग से भरे काल में
जब याद करता हूँ वह कालखंड
तो हैरानी होती है , जैसे कोई जादुई - कहानी सुनी हो
कोई कान में फुसफ़साया
धरती का वंशज आया है
भोर फूटते ही
खेतों में गए खेतीहर लौट

चीनी मिले माखन संग , रात की बची रोटियां खा रहे थे
यह तृप्ति भरी ऐसी घड़ियां थीं
कि बूढ़े किसी को कोस नहीं रहे
औरतें गुनगुनातीं , चक्की पीस रहीं
आटा गूंथती , कपड़े उलीचती , बच्चे नहलातीं
और बीच - बीच में अपने मर्दों को ताक
खिलखिल करतीं
बच्चे , फिर से हुड़दंग मचाने को जुट रहे
मुर्गियां , दड़बों से बाहर आ चुकीं
मवेशी रंभा रहे , कि दूध निकाल लें
यह कैनवास पर उकेरा संपूर्ण सजग चित्र है
जैसे बीते की नब्ज़ केवल महसूस करने वाले में धड़कती है
वैसे ही उसे मनकों सा घुमा सकते हैं
एक शाम रेडियो बोला
कहीं पे लिबरमैन - सुधार जैसी बात हुई है
गांव वाले समझे नहीं , बैंड बदल दिया
उन्हें तो आराम से , गांव की हट्टी से
अनाज , दूध ,देसी घी के बदले
नमक , राशन , सूती कपड़े मिलते थे
आज सोचता हूँ
कहां जानते होंगे , अर्थव्यवस्था का ककहरा
पैदावार के लक्ष्यों की परिभाषा , तकनीक ही
चक्के घूमते हैं
घूमतीं हैं सूईयाँ ...

अब यहां एक कस्बा है

जहां कुछ शादियां सजी हैं
कुछ अधेड़ , शतरंज की बिसात बिछाए हुए
तथा एक नामी - गिरामी आदमी
जिसने कस्बे में किसी महंत के नाम पर

खोला मिडिल - स्कूल
रामलीला - ग्रांऊड में महंतों के महाब्याख्यान की
तैयारी में जुटा है
इन्हीं महंतों के जमाबड़े के सामने प्रस्तुत करने को
स्कूल के बच्चे
पी . टी . शो , गानों / कब्बालियों का अभ्यास कर
रहे हैं
जैसे रिश्तों में होते हैं पेंच - दर - पेंच
इस कथा का आगाज़ है यह

महासम्मेलन सजा है
चारपाई पर लेटा एक गेरुआ वस्त्रधारी लाया गया
है
जिसके मुँह आगे माईक धर दिया है
तेज़ी से बायीं से दायीं ओर गर्दन घुमाता
वह, मानस की चौपाइयाँ सुना रहा है
बोल, पल्ले नहीं पड़ रहे
फिर भी गदगद हैं ग्राउंड में बैठे कस्बाई
अगली सुबह किसी और बाबा ने अचानक
एक बच्चा उठा, गोद में बिठा लिया
तथा दूसरे किसी महंत पर, धर्म की आड़ में सवाल
दागे
विचलित हुए महंत, रणनीति बनाने लगे

गोद में बैठा बच्चा, इकसार
इस सभी को ताकता रहा
उसे नहीं मालूम
आने वाले किसी दिन
उसकी पीठ पर छपेंगे वक्त के पंजे
फिर मैली पड़ने लगेगी रूह तक
बहरहाल

'71 की जंग छिड़ गयी
ब्लैक - आऊट के आदेश जारी हुए
एक रात
महासम्मेलन रचने वाले उसी बड़े आदमी ने
अपने मुर्गीखानों में जैसे ही बल्ब जलाए
बमबारी हो गयी
मुर्गीखानों समेत कई मकान दुकानें, गलियां ध्वस्त
हो गए

यदि परखूँ
कितना बचा है जल
कौन चलेगा, कौन बुझाएगा अनबुझी आग
तो, एक मुर्दनी छाई है बस
जीवन, किसी शाश्वत रूदन में परिवर्तित होता जा
रहा
फिर भी कहीं साँसों को मिल जाती है, उम्मीद
यही द्वंद्व है
अभी तारीखों पर चढ़नी शेष थीं
झूठ की पर्तें
जहां आम तो आम
देश के सर्वोच्च नेता / पदाधिकारी

झूठ की सड़ांध में लिथड़े मिलने बाकी थे
पृष्ठ के दूसरी ओर
बच्चे, स्कूल जाते हुए
पानी में तैरती मछलियों की पूंग देख
ठिठकते, तालियां बजाते, अटपटी शर्तें लगाते
उनके जहां झूठ की गंध तक न पहुंची थी
यह किसी बिसरे अध्याय के उस खंड जैसा है
जहां, कोई माँ घर में
सत्यनारायण की कथा बाँचती मिलती है

बच्चों की शरारतों पर, पिता उठक - बैठक कराते
पड़ोसी , समझ में आते

इसी कथा के एक अध्याय में
देश के पहले प्रधान के देहांत के तीन साल उपरांत
चमगादड़ मंडराने तथा
शमशानों में गीदड़ हूंकने के साथ ही
मेहनतकश / किसान एकजुट हुए
पटनी शुरू हुईं, अट्टालिकाएं
कथित आज़ादी से मोहभंग हुआ
वसंत का हुआ वज्रनाद
साधुओं की गोदी में बैठा
कब्बालियां गाता
शरारतों पर खूब पिटने वाला, वही बच्चा
मिट्टी में चीटियों की खुदाई ताकता
आगे की पढ़ाई पर निकला
इस कथा के पृष्ठ पलटता है

जहां, दरख़्तों से हाथ बांध
भूना गया, मुल्क का भावी
माताओं की कीरने डालतीं , सूख चुकी आँखें
जहां, बाप तक अपाहिज बना डाले गए
चिताएं तक न जलीं
क्षत - विक्षत सड़ती रहीं लाशें
अपने ही कदमों के निशान पकड़ में नहीं आते
गहन रहस्य में डूबी जेलें
उसकी चेतना में झड़ रही हैं पपड़ियां
झड़ रहा है काल
झड़ रहा समग्र प्रशासन
भौंचक दिशाएं
बस चीखें ,चीखें ही चीखें

ये , उन सवालों से भी ज़्यादा ख़तरनाक रहे
जो उठे व चौतरफा फैल गए ...

वह इसे देखता है , विक्षिप्त सा
इस बीच छात्र - आंदोलन होता है
और एकदिन वह अपने को
इसमें शामिल हुआ पाता है
उसे लगता है, भरेगा तमाम दरारें
लहूलुहान पक्षियों की मरहम - पट्टी करेगा
मिटाएगा छटपटाहट
अपनी तमाम तकलीफ़ें छिपाए
उदासियाँ,दफ़न करते
तजता शोकगीत
उस नायक के पास जाता है
जिसे लोक में ' शहीद ' कहा गया

हर तरह की गुलामी मथता
संघर्ष को पोशाक सा पहनता
चुनता, बेहतरी के विकल्प
वही बच्चा
जिसके पूर्व के एक गांव में
फूटी थी चाँदनी रात
वह गांव कब का उजड़ चुका
कि तब से लेकर अब तक
हत्याओं पर पुष्प - वर्षा हो रही है
उल्लुओं के झुंडों से झंडे हैं

तपे समय में जो मर खप गए
उन्हें सलाम करते हुए
उसने सोचा
कुछ अलग करना होगा

चाहे छोटी ही सही
खींचनी पड़ेगी लकीर ज़रूर
तारीख़ों पर उतरती
यही हमारी पहचान होगी
एक भरी - पूरी ज़िंदगी
जिसमें लौटेगी हंसी - ठिठोली , खूबसूरती
मौत का हरेक भय, उड़न - छू हो जाएगा
ऐसी लकीर
जिसका लोग बेसब्री से करें इंतज़ार
यह एक छोटी सी चाबी होगी
जिससे कोशिश करेंगे
लोहे के भारी गेट खोलने की
हम, मनुष्य और जानवर में भेद करना सिखाएंगे

मुक्त करेंगे, हवाएं
ऐसा जीएंगे, कि सभी
सभी का दुःख महसूस करेंगे

आदिवासियों, दलितों, मेहनतकशों ,स्त्रियों के
संत्रास भरे दौर में
जहां जान - बख्शी ही जीवन - मूल्य बचा हो
चुपचाप जुटे रहना
हर तरह के संताप पर भारी है
यह लड़ाई जीवन के लिए होगी
धरती के लिए
दुःख से रिसते मवाद को स्याही बना
कविता - पोस्टर रचे गए
नुक्कड़ हुए
रंगी गयीं दीवारें
जुड़े साथी, जुड़ने लगे
यह दिलासा पर्याप्त है
कि नक्शे को चाहे जैसा घुमाएं
इस महादेश में लकीरें खींच रहे हैं
सिरफ़िरे
फिर - फिर रचते, इतिहास
अनगिन चाँदनी रातें
दबे - कुचलों के आँगनों में उतारने की तैयारी में
जुटे

अधेड़ हो चुका वह बच्चा
आज कभी अकेले में अचानक
हँसने लगता है
इस हँसी पर कोई बंदिश नहीं लगा सकता ।
***

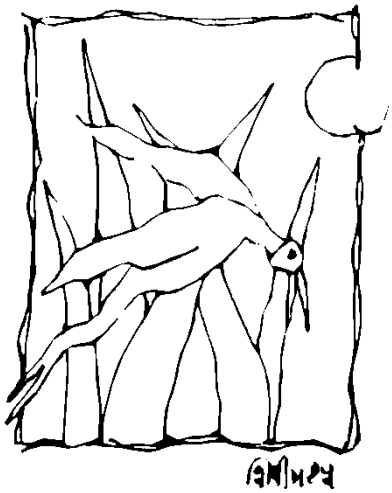

मज़दूर के पसीने का बहना ही उसका सबसे बड़ा गहना है!

राजेश पाठक की कविताएँ

गाँव की औरतें

दौर भले हो
ग्लोबल विलेज का

पर अब भी
भोली हैं
गांव की औरतें

शहर की औरतों से
भिन्न होती हैं
उनकी ज़रूरतें

उन्हें घर में
मोटर कार होने से ज़्यादा
फसल तैयार होने की
रहती है चिंता

उन्हें पता होता है
चाची, मौसी
और पड़ोसी भी

संवेदना की संजीवनी भी
होती है अगाध

जीवन चलता रहता है
बिना रूके
निरंतर,अबाध...

मज़दूर

मज़दूर जब उठाता है टोकरी
तो इस तरह उठा लेता है
देश के बोझ को
अपने माथे पर

वह जब खोदता है कुआं
तो बुझा जाता है देश की
प्यास को
वह चलता है तो देश चलता है

उसका हर क़दम बढ़ाता है
देश को सौ क़दम आगे
देश का जीवन-तार
जुड़ा होता है
मज़दूर के जीवन-तारों से

इसलिए
उसका निरंतर चलना ज़रूरी है
उसका इस तरह चलना ही
देश का चलना होता है
और बैठना ! देश का बैठ जाना,,,

मॉर्निंग वॉक

मज़दूर जब सो कर उठता है

तो नहीं जाता है
मॉर्निंग वॉक पर

वह नहीं बहाता है
ख़ामख़्वाह पसीना

उसे पता होता है पसीने की
हरेक बूंद की कीमत
उसके बहे पसीने से
निर्मित होती आई हैं
बड़ी-बड़ी इमारतें
लंबी - लंबी सड़कें
और क्या-क्या नहीं!

इसलिए वह
वहीं बहाता है पसीना
जहां से संभव होता है
उसका जीना
और देश का भी
होता है चौड़ा सीना

मज़दूर के पसीने का
बहना ही
उसका सबसे बड़ा
गहना है!
***

अभी फिलहाल वे पर्वतीय जीवन की दुश्वारियों पर बात कर रहे हैं

भूपेन्द्र बिष्ट की कविताएं

राज़ हो कितना गहरा

प्रेम में प्रतीक्षा से पाला पड़ता रहता है
प्रेम के साथ एक प्रकाश भी नत्थी होता है अपने किस्म का
यूं मनाते रहते हैं प्रेमी जन
न हुआ करें ये दोनों चीजें

प्रतीक्षा में मीठी आतुरता का जो सन्नद्ध भाव होता है
उसे मानते ही नहीं दोनों
उल्टा कहा करते हैं
कोई नहीं होता सब्र का फल मीठा
सब कहने की बातें हैं

दुनिया की निगाह से बचकर
या लोगों की नजरों से छुप छुपाकर
चुराए गए क्षणों का आशय
किसी भी शब्दकोश में इस तरह नहीं मिलता
जैसे वह हो एक घुप्प मौका
कतई उजाले के बगैर

पर समझ लिया करते हैं इसे बिल्कुल वैसा ही वे --
जिनकी बात हो रही है

गर्मियों में पेड़ों की छांव में प्रतीक्षा करती
प्रेमिका युगों से स्तंभित हो जैसे
बरसात में किसी परित्यक्त इमारत की आड़
में इंतजार करता प्रेमी भी मानो वर्षों से जड़वत
खड़ा हो
पर शरद की निर्मल गुनगुनी धूप बनाए रखती है
प्राणवान
किसी भी मोड़ पर प्रतीक्षारत इन प्रेमियों को

हिमाकत पर उतर आएं
तो शाम का झुटपुटा और नीम रोशनी भी
काम की चीज़ हो सकती है
प्रेम में मुब्तिला जनों के लिए

अलबत्ता उनकी नज़दीकी को लेकर
लोगों की खुसर फुसर प्रकाशित करती रहती है इन
बेचारों के विरल और विपुल संसार को कुछ इस
तरह
मानो कोई डालता जाता हो किसी गुह्य चीज़
पर टॉर्च की फुल रोशनी बीच बीच में.
***

कुछ और कह रहा है ट्रेंड

वैसी फिल्म अब नहीं आती
जिसे देखकर युवतियां अपने आंसू पोंछती हुई
निकलती थी सिनेमा हॉल से बाहर
मां के संग

वैसे कथानक भी अब कहां रचे जाते हैं
जैसे बच्चा अगवा कर ले कोई गद्दार गर
तो उसे छुड़ाने धर्मेंद्र के जाने पर
ताली बजाने लगें पर्दे के आगे सयाने भी
होकर मुतमईन

पुरवा सुहानी आयी रे ~ पुरवा,
ऋतुओं की रानी आयी रे .....
जब यह गीत बजने लगे अंदर
और उस पर भारती के मोहक नृत्य का छायांकन
जोरदार
तो किशोर उम्र का भाई उठ आए अपनी सीट
छोड़
जो दीदी भी आई हो 'पूरब और पश्चिम' देखने उस
दिन

आंखों की ऐसी शरम, ऐसी तरबियत
सिनेमा के झूठे किरदारों के साथ ऐसा अगाध सच्चा
अपनापन
अब स्मृतियों में भी शेष नहीं रहा

अपने बीते दिनों की ऐसी धुंधलाई कहानियों को
मन ही मन हम लाख उकेरने भी लगें फिर से इधर
घर - बाहर नए बच्चों के मोबाइल पर उधर
ट्रेंड मगर करते जाते हैं 'गॉसिप गर्ल'
या 'द बॉय इज माइन' टाइटिल वाले म्यूजिक
वीडियो.

रास्ते

रास्ते बने हुए हों या बना लिए जाएं
उन पर चलना ही तो होता है कहीं जाने के लिए

या कहीं से वापस लौटते हुए

बात इतनी सी ही होती
तो ज्यादा मुश्किल न होता
छूटे हुए रास्तों का बखान

चलते चलते थक जाने से हम रास्तों पर
बैठ भी गए अक्सर
कई मर्तबा ठहरकर खड़े खड़े उसकी प्रतीक्षा करते रहे
साथी जो, बोझिल कदमों से आ रहा था क्लांत

कभी रास्ते में पड़ी हुई माचिस की डिब्बी मिल गई हमें
वाह ! उसकी उपयोगिता का ख़याल
कि धूप दिखाई जाएगी इसे तो सीलन जाती रहेगी
इस तरह छुटपन में गांव-घर के रास्ते
हमारे खिलंदड़ापन वाले रास्ते थे
और बाद में कामकाजी दुनिया के रास्ते
बगैर हमनवा वाले

कुछ रास्ते ऐसे भी थे जो शायद हमें बुलाते रहे
पर हो न सका उन रास्तों पर फिर से हमारा आना
उन रास्तों का खयाल मगर हमें बराबर रहा
कोई हंसी जैसा, कुछ कसमे-वादे जैसा
किसी हर्बेरियम में सहेजे शुष्क पुष्प दलों जैसा
और कभी नए मौसम की पत्तियों के हरेपन जैसा भी

इस मलाल को काफी हद तक कम कर देता है
इंदीवर का लिखा यह गीत सुनना --
हंसते हंसते कट जाए रस्ते
जिदंगी यूं ही चलती रहे. .....
***

नाम जालपा

देर वसंत से
उस पौधे में पत्तियां आनी शुरू होती हैं
और भरपूर ग्रीष्म तलक
लकदक हो जाता है वह घने हरेपन से

उसे न तो आंगन की जरा सी जगह में
किसी हुलास से लगाया गया
और न बड़े जतन से किसी गमले में
हर मौसम में अपने आप पनपता रहा वह
दीवार और रास्ते की संधि पर

मानसून की बारिश अपने वक्त पर हो या न हो
मेघ घहरा उठने भर से ही
उसमें फूल आने लगते हैं
सुंदर, रानी रंग के
उन फूलों का नाम मैं जानता न था

एक रोज़ हमारे घर आए उद्यान महकमे के
आलिम-फ़ाज़िल
आपने बताया कि ये जालपा के फूल हैं

तभी से मुझे उन फूलों के साथ
दो और चीज़ प्रिय लगने लगी
एक नाम जालपा
दूसरा फूलों और वनस्पतियों को

नाम से बुलाने का हुनर.
***

बेचारे पहाड़

लोग पहाड़ क्यों आते हैं
हिमालय देखने
या कि उनके पास पैसा होता है

वे हवा पानी बदलने की चाह क्या इसलिए रखते हैं
कि उनके पास फुरसत होती है

सघन वृक्ष, चढ़े वैशाख में भी गझिन हरियाली,
कृशकाय बनैली नदी, कोई सुर्ख फूल भी मिल सके जहां
सुबह तड़के निकल पड़ते हैं उस तरफ
इसलिए कि उनके पास उन्नत किस्म का एक कैमरा होता है

अभी फिलहाल वे पर्वतीय जीवन की दुश्वारियों पर बात कर रहे हैं

क्या करें ?
कल शाम से मोबाइल नेटवर्क काम ही नहीं कर रहा !
***

मिट्टी से रोटी नहीं न बनती खाली चूल्हा बनता है

इरा श्रीवास्तव की कविताएं

ठूंठ

पिता के जाने के बाद
उनकी अनुपस्थिति का अहसास
सबसे अधिक कही नुमाया हुआ
तो वो मां का सूना माथा था

बैठक में
पिता की मेज पर खुली उनकी किताबें
एक बारगी ये भ्रम दे भी देती
के अभी वो कही से आयेंगे
और पूरी करेंगे अपनी आधी लिखी कहानी
किंतु मां का सूना माथा तो
सिरे से नकारता था हर उम्मीद को

मां
को इस रूप में देखना
दुनिया के तमाम पेड़ पौधों को
ठूंठ देखना था
जिन पर बसंत अब कभी नहीं उतरेगा
उन्हें यूं देखने की आदत
डालने की चीज थी ही नहीं

हमने ठाना हम टांक आयेंगे
ढूंढ कर हर ठूंठ पर
एक आखिरी पत्ता हौसले से भरा

ओ. हेनरी की कहानी की तरह
हमारी मनुहार पर
अब लगाती है मां भी
अपने माथे पर छोटी काली बिंदी
और दिखती है कुछ सहज।

गुजांइश

दिन भर की थकान ओढ़े
रात जब उतरती है बिस्तरों पर औरतें
वो मसलती है
पांव के एक पंजे से अपना दूसरा पंजा
मोड़ कर चटकाती है सारी उंगलियां
मलती है अपने हाथों से
कंधो और गर्दन पर कोई पीड़ांतक तेल
बुदबुदाती है कि पेर दे कोई
गन्ने की तरह उनका जिस्म
और निचोड़ लें सारा दर्द

पर इस कदर थकान में भी
रखती है वो
थोड़ा और थकने का बूता अभी

तब किसी बुजुर्ग के आवाज़ देने परे
दबा आती हैं उनके पांव
सोए बच्चे के कुनमुनाने पर
कर देती है उस पर थपकियों की नर्म छांव
और पति की मनुहार या मंशा पढ़
ले आती है
थके चेहरे पर अनुराग के भाव
स्त्रियों में हमेशा बची रहती है
थोड़ा और स्त्री होने की गुंजाइश।

मनमुताबिक

टोकी गई आदतों
सिखाए गए सलीकों
थोपी हुई नसीहतों
और मढ़े गए आदेशों की
मोटी परत के नीचे
कसमसाती हुई औरत
हो जाती है निर्विकार
और एकदम मनमुताबिक।

मौत

सबसे पहले
उसकी सब उम्मीदें मरी होंगी
फिर सारे सपने
और अंत में सारी अभिलाषाएं
अभी अभी रेल की पटरी पर
जो शव मिला
वह मरे हुए सपनों, उम्मीदों
और अभिलाषाओं का
साझा रिहायशी मकान था
बाकी चश्मदीदों ने बताया
लड़का अभी जवान था।

अगर

उसे तब तब
भरकस प्रयास करके
बोलना था "ना"
जब जब
उसकी जबान
तालू से चिपक गई
कंठ सूख गया
और होंठ सिल गए

उसे तब तब बनना था
कुछ बुरा जब जब
उससे कहा गया
"मुझे तुमसे यही उम्मीद थी"

और तब तब उठाना था सर
जब जब उसने सर झुका कर
बोला "जी ठीक है"

अगर उसने
यह सब किया होता
तो वह भी जान सकती
पंख शब्द के माने
वह भी गा सकती
पंछियों के गाने

कुम्हार

आँवे सा लाल हो रखा है
क्षोभ से उसका मुख
चाक से तेज चल रहे है
माटी को आकार देते उसके हाथ
और हाथों से तेज
उसके मन के विचार

ठान लिया है उसने
इस हफ्ते ढेर सारे बर्तन गढ़ेगा
कुल्हड़ और दिए नहीं
कांच के कप और
बिजली के लट्टुओं के आगे
कोई नहीं पूछता इन्हें

कुछ अलग गढ़ेगा
गमले बनाएगा,
शहरी लोगों ने
जंगल भले काट डाले हो
पर छज्जों पर गमले खूब सजाते है
और सुंदर गुलदान भी

बैलगाड़ी में लाद ले जाएगा
कस्बे में नहीं
अबकी शहर की हाट में
दुकान लगाएगा
लगानी ही होगी
मिट्टी से रोटी नहीं न बनती
खाली चूल्हा बनता है ।

आग

गर्म होते घी में
बूंद भर आब का

आसान खेल है
चमचों में आग भड़काना
तब जब
बंद छतों की रसोई में
पक रही होती है दाल।

सपनों के ढंग

हमने देखे थे सपने घर गृहस्थी के
खूबसूरत गोल मटोल बच्चों के
अपने खुद के एक मकान के

पर वो सपने थे
उनके अपने तरीके होते है
वे अपने ढंग से सच हुए
उसके दो और मेरे एक बच्चा है
हां मकान दोनों के खुद के है।
***

जरूरतें

रूसी जैसी लगती है...

दूध, दही, सिरका, तेल
चोकर, चंदन, बेसन, मंगरैल
हर इंतजाम किया
खत्म होती ही नहीं

....जरूरतें झरती रहती है।
***

दुःख

ये अचानक आता है
दूध में आए उबाल की तरह
और उफना कर
मंद कर देना चाहता है
ताब की आंच

आंच
जो कुछ भी हजम करने लायक
बनाती है सबकुछ

उसे न बुझने देना
दुःख को
हजम करने लायक बनाता है।
***

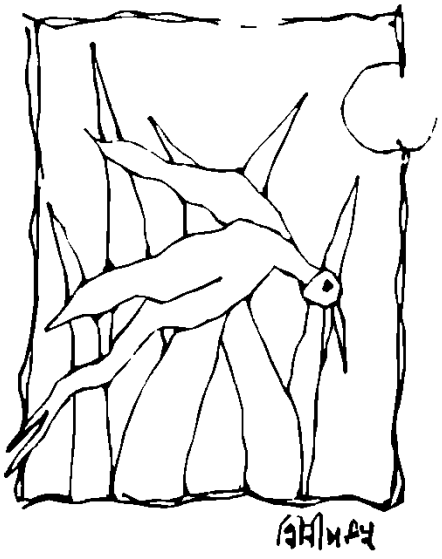

मेरी प्रार्थनाओं की वजह से वह बना रहा ईश्वर

रीना शाही की कविताएं

1

मैंने जब भी उसकी बात की
आँखें भर कर की
गालों में लाल कोंपलें फूटने तक
आवाज़ के काँपने तक
गर्म लहू के और गर्म होने तक
ख़ुशी के सम्पूर्ण निखरने तक
कभी ख़ुद के रेत
कभी पहाड़ होने तक की

जब भी पुकारा गया मुझे
उसके नाम से
मैंने महसूस किया
गुनगुनी धूप के सुनहरे पीलेपन का
आवरण अपने हृदय पर
हवा में पराग कणों का घुल घुल कर
विस्फोट के साथ बिखरना
पलकों का ख़ुद ब ख़ुद गिरना
मैंने पाया ख़ुद को
एक कैनवास की तरह
और
उसको कूची पकड़े हुए
उसके सारे रंगों के साथ
***

2

मेरी प्रार्थनाओं की वजह से
वह बना रहा ईश्वर
मेरे ही मूक और मुखर
विरोध से
कभी समर्थन से
मैं बनी रही मनुष्य, मर्त्य जगत में क्षणिक
इस तरह मैंने ज़िंदा रखा उसे
वह मरा नहीं है
हालाँकि मेरा अपना जाना तय है
वह नहीं रहता मौन
ना मैं करती हूँ जी हुज़ूरी
मैं मानती हूँ तुच्छ प्राणी उसने नहीं बनाये
मेरे ईश्वर का सिंहासन इतना भी ऊँचा नहीं
जहाँ से वह ना देख सकें ना सुन सकें
मेरा समर्थन मेरा विरोध
***

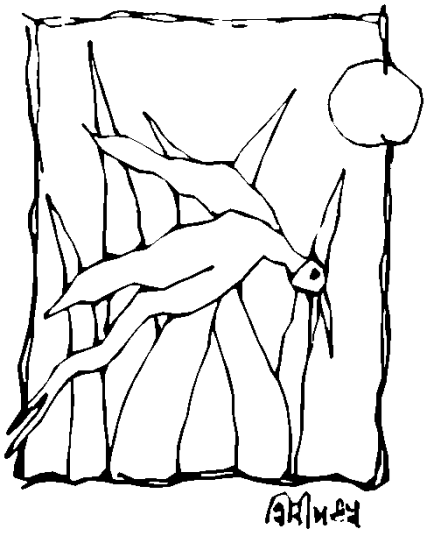

आकंठ प्रेम में डूब कर तुम्हें ऐसा ही पाती हूं

तुलसी छेत्री की कविताएं

मन के नील

हमारे यहां जब शरीर पर नील पड़ जाता है
तो कहते हैं
डायन खून चूस लेती है
हल्का सा छू जाने पर भी दर्द होता है
फिर मंगल या बीर को
चावल,सफेद फूल
और रुपए रख कर
बूढ़े वैद्य के पास जाना पड़ता है
फूंक और मंत्र से डायन दुबारा नहीं आती।
मन पर बहुत पड़ गए हैं
दिखते तो, बूढ़े वैद्य से पूछती
क्या इन्हें डायन ने चूसा होगा?
तसल्ली कर लेती
ये नील तुम्हारे दिए नहीं
किसी डायन के हैं।
***

आकंठ प्रेम में डूबकर

कैसे लगते हो?
जैसे -
मर्तबान से निकाल
फिर चखे रंगबिरंगे लोजेंज्स
और
पत्तों के दोनों मे सांदी हो
खट्टी कैरियां,
जैसे -
महीनों बाद, घोंसले
आया हो सिपाही
और
अरसे बाद
मां ने परोसा गुड वाला भात,
जैसे -
उंगली से
निकल आया हो कांटा
और
प्रसव पीड़ा में सुना हो
पहला रोना
जैसे
वादियों में फिर लौट आई
शांति
और
शांत झीलों में शिकारा।
आकंठ प्रेम में डूब कर
तुम्हें ऐसा ही पाती हूं।
***

पुनर्पाठ

पुराने प्रेम से मिलकर
मैंने जाना -
वादों की सीढ़ी आरा लिए,
चांद तारों तक नही पहुंचती।
मैंने जाना-
सब्र पर बंधा रहता है,

मजबूत भाखड़ा नांगल डैम ।
मैंने जाना -
बिछड़ने के बाद बची रहती हैं संभावनाएं,
अंतिम मुलाकात की।
पुराने प्रेम से मिलकर
मैंने जाना -
जरूरी होता है,
प्रेम में, प्रेम का पुनर्पाठ ।

***

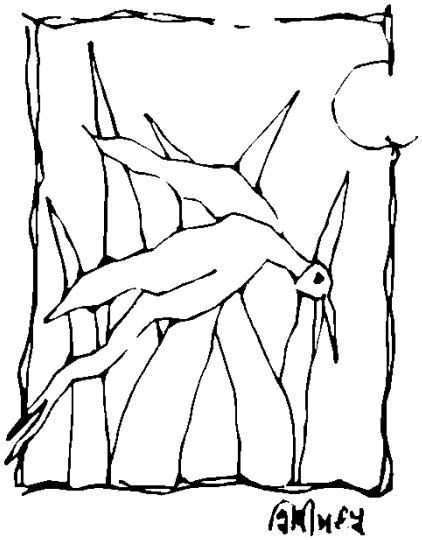

जैसे नींद सुनती है सपनों को जैसे एकांत सुनता है अकेलापन

ऋतु डिमरी नौटियाल की कविताएं

सिर्फ़ एक शब्द नहीं, कोई शब्द

आसमान में जब आते हैं बादल
कोरे कागज में जैसे आ जाता है शब्द
शब्द, मुखपृष्ठ हो जाता है
अर्थ, पूरी किताब
युद्ध लिखो तो
विनाश आ जाता है
विनाश की लपेट में
आ जाती हैं पीढ़ियाँ
प्यार लिखो तो
वर्जनायें आ जाती हैं
वर्जनाओं की लपेट में
आ जाती है सहज शांति
कलम लिखो तो
हथियार आ जाता है
हथियार की लपेट में
आ जाती है आजादी
आसमान में जब आते हैं बादल
नीचे धरती समझ रही होती है
अकेले नहीं आते बादल

***

घुन कौन !

सीट पर रुमाल फेंककर
नहीं घेरी थी उसने जगह
ना ही कुत्ते की तरह जगह जगह मूत कर
गंध से बनाये थे अपने इलाके
अप्रवेश हेतु
तुम रखते हो दाने की थाली, धूप में;
वो आदमी नहीं है
जून की गर्मी में टीन के छप्पर के नीचे
अपनी शर्म छिपाये, पर देह जलाये;
घुन है भयी, निकल आयेगा बाहर
भागेगा वो कहीं ना कहीं
दाने के भीतर उसने अपने रुमाल नहीं फेंका
"उसने मेरा दाना है घेरा"
तुम चाहे कहते रहो कितना ही

प्रेम पत्र

एक ही लिफ़ाफ़ा थामे रहा
कितने सालों के ख़त,
पते बदलते रहे ख़तों के
कानों का पता नहीं बदला,
जैसे नींद सुनती है सपनों को
जैसे एकांत सुनता है अकेलापन
जैसे भूख सुनती है पेट में
पानी के चलने की आवाज़
जैसे रात सुनती है
दीमकों की लकड़ी चबाने की आवाज़
वैसे ही कान सुनते रहे
अंत तक
प्रेमपत्र

अप्रतिबद्ध

आओ कान खाली करते हुए,
सहमति के फर्श में
कुछ घंटियाँ गिर रही हैं असहमतियों की
उन्हें ध्यान लगाकर कानों को सुनाओ
आओ आंख खाली करते हुए
असहमति की आच्छादित धूप में
वो कोना तलाशो
जिसमें आंखों के लिए
सहमति का छाया भर अंधेरा ढूँढ पाओ
आओ हाथ खाली करते हुए
ऊंगलियों से छोटी छोटी खुशियाँ उठाओ
उन्हें जुगनुओं की पीठ पे बिठाओ
उन्हें छोटी छोटी रौशनी में चमकते देख पाओ
आओ पैर खाली करते हुए,
अपने घर को नापो अपने पैरों से
एक यात्रा बनाकर,
कहीं से भी लौटो
अपनी इस मंजिल को अपने लिए
इंतज़ार करता हुआ पाओ

विनिमय

प्रेम में पड़ती है लड़की
घड़ी में चाबी देना भूल जाती है
समय,
जैसे धड़कना धीरे हो जाता है
धारा,
डर का किनारा पार करती है बेधड़क
वो थोड़ा!
लड़का बन जाती है

प्रेम में पड़ता है लड़का
गुम हुई घड़ी मिल जाती है उसे
सुइयों को संभालता है नजाकत से
वो थोड़ा !
लड़की बन जाता है

चेखव के लिए

(तितली, दुल्हन)
वो कभी तितली की तरह भटक रही थी
हर फूल में
अपना रस ढूँढती हुई,
हर फूल को छूकर
वही फूल बनने की कोशिश करती हुई
तुमने ढूँढी
उसके भीतर एक और स्त्री,
उसका मन
मनुष्य कर दिया
अस्तित्ववाद के सवाल से जूझता हुआ,
साशा तुम ही हो
तभी भी, अभी भी

बस का फ्री टिकट

1.
दादी बोली थी
मुन्नो चुप रहो
खेत भी आदमी का
रोटी भी आदमी की
जेब भी आदमी की
पैसा भी आदमी का
इज्जत भी आदमी की

आदमी भी आदमी का,
जो बोल दोगी
तो सब गंवाओगी
मुन्नो बोली
एफ आई आर कराऊंगी
दिल्ली के हर कोने में बस जाती है
कोई एक कोना तो होगा
जो मेरे लिए काम थामे होगा
जेब मेरी होगी
आवाज भी मेरी होगी
2. मुन्नो को काम मिला
मुन्नो ने शन्नो को बताया
शन्नो ने बन्नो को बताया
पूर्वी दिल्ली ने पश्चिम दिल्ली को बताया
उत्तरी दिल्ली ने दक्षिण दिल्ली को बताया
फेयरर सैक्स के पैरों से रौशनी फूटने लगी
अंधेरे थकने लगे जैंडर अनुपात के वजन से
वो,
सहारा पाने के लिए
उजाले की तरफ सरकने लगे
3. मुन्नो सुन रही थी
मोबाईल में वाद विवाद
"औरतों के लिए बस का फ्री टिकट
घरों के टूटने की तरफ
पहला कदम होगा"
मुन्नो ने कमेंट लिखा
" घर को पहले
पिंजरे से आज़ाद होकर
घोंसला तो बनने दो"

मन इच्छाओं का ज़ख़ीरा है देह उसके लालसाओं के बोझ से दबा मासूम

सुमन शेखर की कविताएं

बिना व्याकरण के बोली जाने वाली भाषा हो तुम

तुम इतनी दूर रहीं कि कुछ भी कहा नहीं जा सकता
तुम रहीं इतने पास भी
कि कुछ भी साफ़ देखा-सुना नहीं जा सकता

तुम्हारा होना संक्रमण की तरह उतरा है मेरे भीतर
जब तक पूरा बदन भीगा
तुम रिसकर चली गई ठीक महसूस होने के पहले

तुम्हें याद करते हुए
मैं फिर से अंधेरी गुफा में फंस गया हूँ

मेरी वास्तविकता बेरंग, बेज़ार है
जीने के लिए मुझे कल्पना में रंग भरने होंगे

बहुत कम में बहुत पर्याप्त रहीं तुम!
तुम बिना व्याकरण के बोलो जाने वाली भाषा हो
तुम्हारा होना भर काफ़ी नहीं है मेरे लिए

तुम्हें ठीक-ठीक समझने के लिए
मुझे तुम्हें फिर से भूलना होगा

गलतियाँ
अंततः सब सही कर देती हैं न!
***

प्रेम की चाह में इच्छा बनी बाधक

हम जितना खेलते हैं
उतना ही मुक्त होते जाते हैं
कुछ खेल हमें जितना मुक्त करते हैं उतना ही बाँधते भी हैं

चाहता हूँ निर्भीकता का रस बचाए चल पाना
मैं कर्मठता को अमानवीयता सा देखने वालों का वंशज हूँ

बहुतायत सत्य
एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाते बदल जाता हैं

मेरे स्वप्न में दिखा था नीला फूल
मैं आज तक उसी फूल की तलाश में हूँ
मुझे उम्मीद है कि बरसों बाद भी
उसकी पंखुड़ियों में भरी होगी मेरी नींद की गंध

प्रेम मेरे लिए उतना ही दूर रहा जितना नीला फूल
फिर भी मैं अडिग रहा उस स्पर्श को किसी आस की तरह

नहीं हूँ मैं ऐसा किरदार
जो ठोक लूँगा नली प्रेमिका के न मिलने पर
बचता रहूँगा हरबार प्रतिबंधित हो जाने से

अपने पुरखों के मुंह से निकला वाक्य हूँ जो श्लोक की तरह चहकता है
इतिहास की निरन्तरता, विकास और योजना को अपनी चोंच में बांधे

मेरी प्रेम कविताओं ने भारी कीमत चुकाई है
बाज़ नही आए प्रेम और हिप्पियों को सहोदर मानने वाले

ईश्वर का भी एक अंधेरा पक्ष है
बहुत कुछ चूका है ईश्वर से

नीले फूल की अबतक गंध आती है

प्रेम की चाह में इच्छा बनी बाधक
प्रेम के मिलने पर दौर कहाँ रहा शेष!!
(बुनुएल, (हाइनरिख), वरदर (गेटे के उपन्यास का एक पात्र), शैलिङ्ग को पढ़ते हुए)
***

विरोध का विलोम पर्याय नहीं है समर्थन का

मैं हूँ युद्ध में मारे गए सिपाही की तरह
तुम हो उस युद्ध की ज़मीन
जिसके लिए मारा गया मैं एक दिन

तुम तक पहुचना इतना आसान भी नहीं
पहुचकर साबुत बचा रह जाना उससे भी मुश्किल है

तुम्हारे चुप रहने पर जो जो कर सकता था किया
होंठ पर लिपस्टिक लगाकर बनाया हनुमान सा चेहरा
सिगरेट की तलब को निबटाने पैर की उंगली से जलाई माचिस
उदासी के ऊपर निराशा को हरका कर पिन कर ली घंटों भर की मुस्कान
नहीं मुस्कुराये तुम
नहीं रुका मैं
नहीं दिखे तुम फिर कभी पहले से
दिनों-दिन लुप्त होता गया मैं

यथार्थ के एकल पक्ष को ढोते जाना
विचारों को कुंद करता है
पक्ष कितने जानने होंगे
कि 'अनभिज्ञ' शब्द विलुप्त हो जाए!

विरोध का विलोम
पर्याय नहीं है समर्थन का
पीले के बीच उभरा हुआ हरा भी
बेनूरी में थककर लो आखिर पीला हो ही गया

कहने में कितनी ही शुद्धता हो
कहना और भी ज़्यादा बचा रह जाता है
तुमने कहने में चुप्पी कही
मैंने उस चुप्पी की जगह लिया शब्दों का सहारा

इंसानों की तरह शहर का भी अपना प्रेम होता है
जितना जानते हैं, और जानने की इच्छा होती है
अंततः दोनों ही मारे गए प्रेम के शहर में

जितनी आँखें हैं
उतनी है दृश्य की भिन्नता

“मैं तुम्हें कभी नहीं भूल सकता”
फिर भी, बीते कई वर्षों में
पास रहकर भी रहा अदृश्य की तरह
एक चुप्पी देह को हमेशा ढकती रही

तुम्हें ढूँढते हुई पूरी दुनिया छान हताश आया लौटा
तुम अलमारी में पड़ी मेरी सबसे पसंदीदा किताब के
बीच के पन्ने पर मिली
शहर, शब्द, प्यार, चुप्पी, अनकहा, तलाश
सब तुम्हारे अर्थ का पर्याय हैं
जब नहीं रहीं पास, इन्होंने गिरने नहीं दिया
खैर, संभाला भी नहीं इसने ये अलग बात है

ऐसे ही तुम्हारे न होने को मैंने
तुम्हारे हमेशा से बने रहने की तरह बचाए रखा
(मिस्ट्री ट्रेन को देखते हुए)

स्वीकार्यता बचा सकती थी सब

हमारे पीड़ित होते ही
हमारा आसपास भी बचा नहीं रहता हमारी पीड़ा से

भीतर दुख और क्रोध के बीज थे
दोषी हमेशा स्वयं की परिधि के दूर-दूर रहा

क्रोधित व्यक्ति कुछ और नहीं
दया की पात्रता रखता है
फेर सको तो फेरो उसके माथे और काँधे पर हथेली
दो उसे क्षमा का दान
जो स्वयं जला हो
कैसे शेष रह सकता है जीवन वहाँ!
कहाँ रहा कुछ शेष!

क्रोध दुश्मन नहीं
प्यारे बच्चे की तरह है
उसे समझना होगा अड़ने और लड़ने के बजाय

सिक्त आत्मा पर जीवन के फूल खिलते हैं
कठोरता मनुष्यता को शापित बना देती है

इतिहास गवाह हैं
जो जितना जड़ रहा उतनी जल्दी बंजर हुआ

प्रगल्भता से पोषित हैं हम
स्वयं को निर्निमेष देखने से बचते रहे
दूसरों को नकारने से बाज़ नहीं आये

यूँ हारी सभ्यता
यूँ हारी धरती
यूँ हारी भाषा
यूँ हारे सब

स्वीकार्यता बचा सकती थी सब
स्वीकार्यता ही लील गयी सब अंततः।

युद्ध के बाद बचा रह गया शहर

1.
यहाँ अब भी वही गंध है
लेकिन उसके साथ चिपकी हैं धूल,
सड़ी हुई लाशों की गंध,
मौत की चीखें, क्रूरता की हद को पार करती हँसी और अट्टहास,
एक-एक कर मैं चुनूँगा सारे टुकड़े
जिसने बसाया हो घर, वो एक-एक टुकड़े का महत्व जानता है

युद्ध के बाद मलबे में सिमट आया शहर
इतिहास में भी मलबे की शक्ल में ही दर्ज रहता है

युद्ध कुछ भी नहीं देता,
छिनता है सब जो भी बचाया जा सकता था
विध्वंश के बाद बचा रह गया रोता है अपनी क़िस्मत पर

खोया है मैंने अपना सब कुछ लेकिन
चेहरे पर हैरानी का कोई वजूद नहीं
कोई आंसू नहीं, कोई दुःख नहीं.
शायद बाद के लिए बचा रखा हो।
होगा बाद में!

2.
बम-बारूद से बसा हुआ शहर लाशों की ढेर में बदल गया
धरती से उठी हाय
कुछ ने कहा वाह
कुछ की चीख़ों से पट गई धरती
कुछ तब भी बैठे रहे हाथ पर हाथ धरे
जैसे किसी और दुनिया की हो बात
जबतक समस्या ख़ुद पर नहीं आती वह दूर की ही लगती है

मेरा दिल मेरे पैरों के नीचे लगा है
दिल धड़कता है ज़ोरों से जब-जब बढ़ाता हूँ अपने चिथड़े हुए क़दम
सारी चीखें धूल में मिलती जाती हैं
बहुत हल्के से लगते हैं मेरे दर्द की चीखें तुम्हें!

पूरा शहर मेरे दर्द को ढोता रहा, एक आह न सुनी मैंने
गुजरो जो कभी सन्नाटे में तुम
संभाले रखना अपना दिल
काश ऐसा होता कि मेरे जख़्म की सूरत
लगाए रखते तुम अपने पास बहुत भीतर
तो बंट जाती मेरी चीख
मेरे दर्द
मेरी तबाही का हर मंज़र
उतर जाता गर तुम्हारे आँखों से
काश ऐसा होता कि तुम भी बिखर पाते शर्म से गड़कर।

दोष भीतर की उपज है

इतना जानने-समझने के बाद
जीवन में संयम सीखना था
निष्ठुरता सीख ली

प्रेम की भाषा बोलने की जगह को
भर दिया नफरती लावों से
मुँह के खुलते ही निकलता है धधका
आस-पास की जगह पर कालिख का अंबार है

बचपन मुझे सबसे ज़्यादा पसंद है-
इसमें आँखें साफ़ होती हैं
जुबान किसी की नकल नहीं होती
हथेली में बिछे होते हैं ख़्वाबों के पंख
साफ देखने के लिए आँखों का साफ़ होना ज़रूरी है
आँखें साफ़ हों तो काई लगा तालाब भी निर्मल लगता है
कह गये हैं पुरखे
दोष बाहर नहीं भीतर से उपजता है

सारी अच्छाई दबी है किताब के पन्नो में
पुरखे के वाक्यों को चाट गया है दीमक
हमने हथेली पर रख फूंक मारी और उड़ा दिया हवा में

लालसा

प्रत्येक बड़े पर्वत के पास लालसा थी
एक और ऊँचे पर्वत की
प्रत्येक बड़े हुए शहर को लालसा थी
एक बड़े शहर की
प्रत्येक इच्छाओं की पूर्ति होते जाने पर भी
उपजती रही एक और लालसा
मन इच्छाओं का ज़ख़ीरा है
देह उसके लालसाओं के बोझ से दबा मासूम

चुपचाप चला जाना

सबसे बुरा जाना
चुपचाप चले जाना है

वो गया!!!!

कल कहकर गया था कि आज आएगा
बीतेगी शाम हँसी-ठिठोली में फिर से
गया तो ऐसे
कि कल तक के होने का 'शुक्रिया' भी न सुन सका
न सुन सका कल का आख़िरी वाक्य

ऐसे भी कोई जाता है भला!

सही कहा था कृष्ण ने
मृत्यु शरीर के किसी अंग पर चिपक कर बैठी होती है जीवन के वरदान के समय से ही
मौका पाते ही करवट बदल कर सारी लीला लील जाता है

हम जीवन देखते हैं
उसमें छुपी मृत्यु को नही देख पाते

कहो
कैसे कहूँ अब वो सब
जो कहना हमेशा के लिए "कह पाता" की हूक में दबा है

जाते हुए जाते-जाते ऐसे कौन जाता है
जिसमें आने का दरवाज़ा
सदा के लिए आँसुओ से लीपा मिले
फिर भी आना न मिले

"है" की उम्र
"था" से इतनी भी कम करने की क्या जल्दबाज़ी थी

बचपन से ही
जब भी मैं देखता हूं अपना चेहरा
खुली आँखों के पार दृश्यों का बन्द दरवाज़ा दिखता है
अब समझता हूं
कि मृत्यु तो कब के प्राप्त हो चुकी है
जीवन का कर्ज़ उतारा जा रहा है बस
***

सदा से ही तमाम जीवनों के लिए अपना जीवन जीती रही है इजा

गिरीश अधिकारी की कविताएँ

लेसू रोटियां

उन दिनों जब
इजा के पास मडुवा था
और मेरे पास थी एक ज़िद कि
गेहूँ की ही रोटी खानी है
तब पदार्पण हुआ इन पहाड़ों में
लेसू रोटियों का
कोई पारंपरिक व्यंजन की तरह नहीं
बल्कि इजा की प्रेमपूर्ण साजिश की तरह,
इनरु मुया और चल तुमड़ी बाटों बाट
सुनाते हुए ,मुझे खेल लगाकर
बड़ी-बड़ी,काली -काली लोईयों पर
बड़े सलीके से चढ़ा दी जाती थी
एक महीन सफेद परत
इस तरह
देखते ही देखते, ईजा की ओर से
ठग लिया जाता था मुझे
मेरा पेट भरने के लिए..
यूँ तो ठगते बाबू भी थे मुझे कभी-कभी
पटांगण के जिस पाथर से मुझे चोट लगती
उसे जोर-जोर से मार के ठगते
मेरे साथ कुश्ती लड़ते ,मुझसे हार के ठगते,
मगर इजा तो मानो
ठगने का हुनर ही लेकर पैदा हुई थी

कई मौकों पर खाली हाथ दिखाकर
मेरे सिर को तेल से सानकर ठगना
कि मुझे सब खिला कर खाली बर्तन से
स्वयं कुछ नहीं खाकर पेट तानकर ठगना
ठगना ,ठगना निरंतर ठगना....
किंतु समय के बीतते कालचक्र के साथ
सबसे बड़ा ठग मैं ही साबित हुआ
गाड़, गधेरों ,धार ,खरकों पर
ईजा को निपट अकेला छोड़
चला आया उससे दूर, बहुत दूर
याद है मुझे ,उस अंतिम क्षण में भी तो
ठगा था उसने मुझे
'जा जा नानतिन तो पढ़ाने ही ठैरे
हमारी चिंता मत करना'
होठों से हल्की मुस्कान के साथ
निकले इन शब्दों के समानांतर
आँखों से निकले आँसुओं को छुपा कर
ठगा था तब उसने मुझको..
अब.....
उससे बहुत दूर हूं मैं
सुना है कि ठगी ठगी सी
बैठी रहती है किसी भीड़े पर
और घाम तापते हुए देखी रहती है एकटक
ठगे -ठगे उन बंजर खेतों को
जिनकी उर्वरा शक्ति
आज भी इंतजार कर रही है
बाबू के जैसे मेहनतकश हाथों का
जिन खेतों में मडुवा बोने के बाद
बाबू को नहीं ठग पाया था कभी
हल का नुकीला नस्यूण भी
सूख चुकी कठोर मिट्टी से
उसका यूँ ही सरक जाना
कितनी जल्दी भाँप लेते थे वे...
और..
उसके बाद की कहानी
मेरे घर के मालगोठ में अंधेरे कोने में पड़ी
बेतरतीब घिस चुकी कुदाली और फडुवा
बेहतर बता सकता है आपको..
खैर...
इन दिनों सुना है मैंने
मडुवा भी ठग गया है सबको
जब उजड़ गया तो श्री अन्न कहलाने लगा है
इधर महानगरों में
बाजार द्वारा ठगे ठगे से लोग
हाथ पाँव मारते देखे गये हैं उसके लिए ,
मुट्ठी दो मुट्ठी पा भी लेते हैं जब कहीं से तो
फिर ढूँढना पड़ रहा है
उनको आग का वह डंगार
जिसमें सेकी जा सके आड़ी,तिरछी,छोटी-मोटी
लेसू रोटियाँ
पहाड़ी हैं साहाब जुगाड़ पहचान है इनकी
वह भी कर लेते हैं
किंतु फिर ढूंढना पड़ रहा है उनको
ठग बाजार में बह रहे
केमिकल घी के सैलाब के बीच
लेसू रोटी के ऊपर रखने के लिए
आमा के हाथ से बनी भुटैन घी की डली ..
और अंततः खोजनी पड़ रही है
थोड़ी बहुत
वही
बचपन वाली भूख भी।
***

ईजा और पहाड़ का जीवन

घुघुती और बांज का रिश्ता
जानता है पहाड़
या फिर जानती है
सिर्फ़ और सिर्फ़ यहाँ की
सदा की रहवासी
इजा मेरी
तभी तो बांज काटते-काटते
छोड़ आती है वह
केवल उस टहनी को
जिसमें है घुघुती का घोल

वह तुम पहाड़ में जिसे
घुघुती का घुरघुराना कहते हो ना
वह धन्यवाद अदा करना भी है
उसका ईजा के प्रति

इस तरह
अपने श्रमसाध्य जीवन से
निपट अकेली
सदैव पहाड़ का
अस्तित्व बचाने की
जुगत में लगी इजा
जीवन और अस्तित्व बचाकर
घुघुती का
चुन लाई है बांज
एक और जीवन के लिए

देखा मैंने उसको
उसने गट्टर फेंका
पल्लू उठाया
और उकाव काटने का हासिल
पसीना पोछा
और चली गई गोठ
लाल माट से लिपे
दो छिलुके और
चार लकड़ियों की तलब में
खाप तान के बैठे
चूल्हे की ओर
कुछ और जीवनों के लिए

सदा से ही
तमाम जीवनों के लिए
अपना जीवन जीती रही है इजा
तो
अभी कुछ और दिन
मुस्कुराइए कि
कुछ ईजाएँ जीवित हैं
जीवित है घुघुती
जीवित है पहाड़
और
पहाड़ का जीवन
***

फिलीस्तीनी युवा कवि हिंद जूडा की कविता

अनुवाद एवं प्रस्तुति : यादवेन्द्र

युद्ध के दिनों में कवि होने का क्या मतलब होता है

युद्ध के दिनों में कवि होने का
क्या मतलब होता है?
इसका मतलब होता है कि
वह सिर झुकाए क्षमाप्रार्थी हो
तुम्हें क्षमा मांगनी होगी बार बार
आग के हवाले कर दिए गए पेड़ों से
घोंसलों से मरहूम परिंदों से ले कर
जमींदोज़ कर दिए गए घरों तक से
सड़क के बीचोंबीच उभर आई दरारों से
मौत के मुंह में झोंक दिए गए बच्चों से
और सबसे पहले उन मांओं से
जो मृत बच्चों के लिए शोक संतप्त हैं
या मार डाली गई हैं।

युद्ध के दिनों में सुरक्षित होने का
क्या मतलब होता है?
इसका मतलब होता है
अपनी मुस्कुराहट पर शर्मसार होना
अपनी प्रफुल्लित गर्मजोशी पर
अपने साफ़ सुथरे कपड़ों पर घिन आना
अपनी उबासी पर
अपनी कॉफी के प्याले पर

अपनी प्रेमिकाओं की मदहोशी भरी नींद
साफ़ पानी पी पी कर तृप्ति से डकारने
जी भर कर नहाने की अय्याशी पर
शर्म से नज़रें झुका लेना
और यह अनायास नहीं कि
ये सारी सहूलियतें तुम्हारे पास उपलब्ध हैं
इस लिए अपने किए पर लज्जित होना
खुद पर थू थू करना।

या खुदा
मैं ऐसा कवि बनने को
बिल्कुल ही तैयार नही हूं
मैं इनकार करती हूं
युद्ध के दिनों में।
***

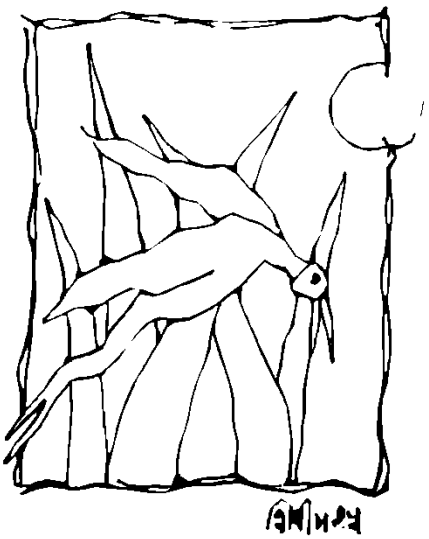

चार्ल्स बुकोवस्की की कविताएं

अनुवाद एवं प्रस्तुति - **योगेश ध्यानी**

Bluebird (नीला पक्षी)

मेरे दिल में एक नीला पक्षी है जो बाहर निकलना चाहता है
किन्तु मैं उसके लिए बहुत कठोर हूँ
मैं कहता हूं, वहीं रहो, मैं किसी और को तुम्हें देखने नहीं दूंगा।

मेरे दिल में एक नीला पक्षी है जो बाहर निकलना चाहता है
किन्तु मैं उस पर व्हिस्की उड़ेलता हूं और सिगरेट का धुआं खींचता हूं
और वैश्याएं और बार टेंडर और किराने के मुंशी कभी नहीं जान पाते
कि वह वहाँ भीतर है।

मेरे दिल में एक नीला पक्षी है जो बाहर निकलना चाहता है
किंतु मैं उसके लिए बहुत कठोर हूँ
मैं कहता हूं, नीचे रहो
क्या तुम मुझे बर्बाद करना चाहते हो?
सारे कामों को बिगाड़ना चाहते हो?
तुम यूरोप में मेरी किताबों की बिक्री ठप करवाना चाहते हो?

मेरे दिल में एक नीला पक्षी है जो बाहर निकलना चाहता है
किंतु मैं बहुत चालाक हूँ
मैं उसे कभी-कभी सिर्फ़ रात में बाहर निकलने देता हूं
जब हर कोई सो रहा होता है,
मैं कहता हूं मुझे पता है तुम हो
इसलिए उदास मत हो।

फिर मैं उसे भीतर कर देता हूँ
लेकिन वह वहां गुनगुनाता रहता है
मैंने उसे मरने नहीं दिया है
और हम इसी तरह अपने रहस्य के साथ, एक साथ सोते हैं
और यह एक आदमी को रोने देने के लिये पर्याप्त है
लेकिन मैं रोता नहीं हूं
क्या तुम रोते हो?

1. मूल कविता का लिंक
https://www.poemhunter.com/poem/blue bird/

A Smile to Remember (एक याद रखने वाली मुस्कान)

हमारे पास गोल्डफिश थीं
जो खिड़की के पास रखी मेज पर
एक बर्तन में गोल-गोल घूमती थीं
मेरी माँ, जो हमेशा मुस्कुराती रहती थी और हमें

खुश देखना चाहती थी
मुझसे कहती,"खुश रहो, हेनरी"

और वो सही थी: खुश रहना अच्छा है अगर हम र सकें
लेकिन मेरे पिता ने अपने 6 फीट 2 के ढांचे में गुस्साते हुए
माँ और मुझे हफ्ते में कई बार पीटना जारी रखा
क्योंकि वह समझ नहीं सकते थे कि कौन सी चीज उन्हें अन्दर से कष्ट पंहुचा रही थी

मेरी माँ, बिचारी मछली,
खुश होना चाहते हुए, हफ्ते में दो-तीन बार पीटे जाने के बाद,
मुझे खुश होने को कहती:" हेनरी हंसो! तुम कभी हंसते क्यों नहीं ?"

और फिर वो हंसती, मुझे दिखाने के लिए कि कैसे हंसते हैं
और वह हंसी मेरे द्वारा कभी भी देखी हुई
सबसे उदास हंसी थी

एक दिन पांचों गोल्डफिश मर गईं
वे पानी पर तैर रही थीं, बर्तन के किनारों पर,
उनकी आंखें खुली हुई थीं,
और जब मेरे पिता घर लौटे, उन्होंने उन्हें रसोई की फर्श पर बिल्ली के सामने फेंक दिया
और हम यह सब देख रहे थे जबकि मां मुस्कुरा रही थी।

2. मूल कविता का लिंक
https://www.poemhunter.com/poem/a-smile-to-remember/

Alone with Everybody(सबके साथ एकाकी)

मांस हड्डियों को ढकता है
और वहाँ भीतर एक मस्तिष्क रख दिया जाता है
और कभी-कभी एक आत्मा,

स्त्रियाँ दीवार पर गुलदान फोड़ती हैं
और पुरुष बहुत ज्यादा पीते हैं
और किसी को भी वह एक नहीं मिलता
लेकिन बिस्तर पर अन्दर बाहर घिसटते हुए
वे उस एक को ढूंढते रहते हैं

मांस हड्डियों को ढकता है
और मांस किसी ऐसे को ढूंढता है
जो मांस से कुछ अधिक हो

लेकिन ऐसा कोई अवसर कतई संभव नहीं
हम सब एक ही भाग्य में फंसे हुए हैं

किसी को भी वह एक कभी नहीं मिलता
शहर की खाली जगहें भरती हैं

कूड़ा घर भरते हैं

पागल खाने भरते हैं
अस्पताल करते हैं
शमशान भरते हैं

और इस सबके अलावा
और कुछ नहीं भरता।
3. मूल कविता का लिंक
https://www.poemhunter.com/poem/alone-with-everybody/

The Genius of the Crowd (भीड़ की विशिष्टता

विश्वासघात, घृणा, हिंसा, विसंगति
औसत इंसान के भीतर पर्याप्त मात्रा में हैं
इतना कि दुनिया की किसी भी सेना की
किसी भी दिन की जरूरत को पूरा किया जा सके

हत्या में सबसे कुशल वो हैं जो हत्या के विरुद्ध उपदेश देते हैं
घृणा में सबसे कुशल वो जो प्रेम का उपदेश देते हैं
और अन्ततः युद्ध में सबसे कुशल वो हैं जो शांति का उपदेश देते हैं

वो जो ईश्वर को प्रचारित करते हैं उन्हें ईश्वर की ज़रूरत है

जो शांति की बात करते हैं वो अशांत हैं

जो प्रेम का उपदेश देते हैं उनके पास प्रेम नहीं है

उपदेशकों से सावधान रहो
ज्ञानियों से सावधान रहो
जो लगातार किताबें पढ़ रहे हैं उनसे सावधान रहो
सावधान रहो उनसे जो गरीबी को कोसते हैं या उसमें गर्व महसूस करते हैं
जल्द प्रशंसा करने वालों से रहो सावधान
क्योंकि वे बदले में प्रशंसा चाहते हैं
जो बात काट रहे हैं उनसे सावधान
वो उन बातों से खौफ खा रहे हैं जिन्हें वो नहीं जानते
जो लगातार भीड़ इकट्ठा कर रहे हैं उनसे सावधान
क्योंकि भीड़ से अलग उनका कोई वजूद नहीं
सावधान रहो औसत आदमी, औसत औरत से
उनके प्रेम से भी रहो सावधान
उनका प्रेम औसत है जो औसत की चाह रखता है

लेकिन उनकी घृणा विशिष्ट है
उसमें तुम्हें मार देने की, किसी को भी खत्म कर देने की क्षमता है
एकाकीपन को न समझते हुए
वे हर उस चीज को नष्ट करने की कोशिश करेंगे जो उनसे अलग है
कला को रचने में असफल वे लोग कला को नहीं समझेंगे वे अपनी असफलताओं को सर्जक की

नाकामयाबी की तरह देखेंगे

देखेंगे संसार की नाकामयाबी की तरह
प्रेम कर पाने में अक्षम वे लोग
तुम्हारे प्रेम को अधूरा मानेंगे
और तब वे तुमसे घृणा करेंगे
और उनकी वह घृणा त्रुटिहीन होगी

एक चमकते हीरे की तरह
एक चाकू की तरह
एक पर्वत की तरह
एक चीते की तरह
हेमलोक की तरह होगी

उनकी सबसे अच्छी कला।

4. मूल कविता का लिंक
https://www.poemhunter.com/poem/the-genius-of-the-crowd/

***

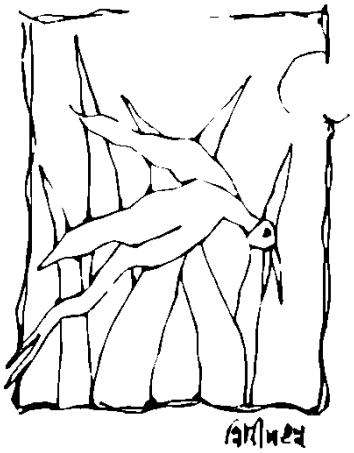

सलगादो मारंय्यों की कविताएँ

अनुवाद एवं प्रस्तुति : शुभा द्विवेदी

1

मैं दुल्की चाल से चलते हुए घर पहुँचता हूँ
घंटों के उपरांत
मेरे अतीत के बियाबान के
एकमात्र आश्रय स्थल पर मैं लौटता हूँ
पगडंडियों की पहचान करते हुए,
अपने स्वप्नों की इबारत को ध्यान में रख कर
सूर्यास्त की वीणा के स्वरों को गुनते हुए

मेरा अस्तित्व उस "मैं" से पहले है
जो हरे प्याज़ की पत्तियाँ खाता है
और दूसरा वो जो छिप जाता है
बिजली की गड़गड़ाहट के दौरान

और मैं पूरी क्षमता के साथ अनुसरण करता हूँ
उसका, जो विस्थापित हुआ है
आने वाले कल के अतीत में
मानो मैं जागता रहा हूँ
मरीचिकाओं की भूमि में

बेनाम शहर मेरे पोरों से फूटते हैं
गुमनाम रास्ते अभी भी मेरे जूतों से लिपटे हुए हैं
बहुत सारी दूसरी पहचानों को इख़्तियार करके
मैं वापस वो नहीं बन सकता जो मैं पहले था।

2

अपनी छुरी से किसी के चेहरे को सहलाना एक सामान्य बात थी। क्रोध के आवेश में क्रूरता का अनुष्ठान होता है जिसकी शुरूआत बहुत गहरे अधोलोक में होती है। मैं उस सूखे वसंती गुलाब को यत्नपूर्वक सँजो कर रखता हूँ जैसे मैंने ही उसकी कल्पना की थी। उन पुरा पिताओं से मुक्त हो कर, जो अभी भी, निश्चित रूप से मेरे भीतर निवासस्थ हैं। बावजूद उस ओढ़ी हुई देसज शैली के जो मुझे अत्याधुनिक बनाता है। लैम्प की रोशनी में गेटे के सान्निध्य के बाद भी।

3

कीचड़ में पदचिह्नों के भ्रामक जाल से निःसृत
वह आदिम अप्रैल
स्मृतियों में गहरे अवस्थित
और अनेक आश्चर्यों का जनक
एक जुनून
एक मिठास
जिसकी परिणति दर्द में होती है
एक प्यास जिसकी बमुश्किल अभिव्यक्ति हुई;वह
नीला रंग
रहस्यमयता से पूर्ण

भीतर तक सिमटा हुआ मैं बाहर आया
झाड़ियों को लाँघता हुआ और तमाम वर्जनाओं
को विस्मृत करता हुआ
नये पथ खोजने का जोखिम उठाता हुआ
न तो पत्थर
न ही हवा

मेरी फ़ितरतें पूर्व धारणाओं से टकराती हैं
मानचित्रों और लंबे समय से विलुप्त
पगडंडियों के दरमियान।

(“मैपिंग द ट्राइब” कविता संग्रह से, 2020)
मूल कविताएँः सलगादो मारंय्यों
अंग्रेज़ी अनुवादः ऐलिक्सिस लेविटिन
***

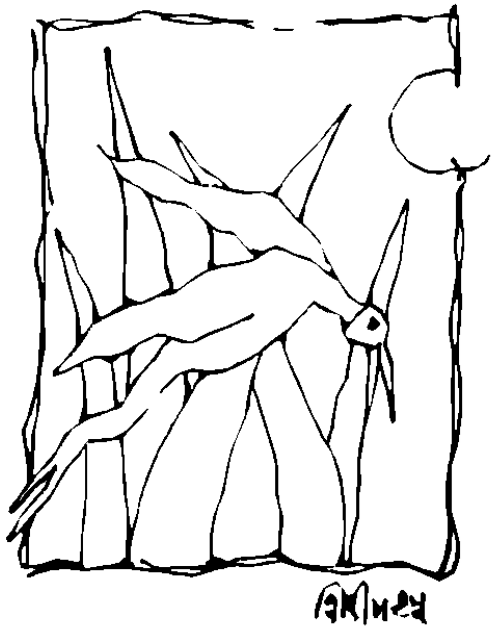

रधुली

अंजलि नैलवाल

बाईं तरफ करवट ली हुई, बायां हाथ सिरहाने-सा रखा हुआ, और घुटने पेट तक मुड़े हुए। शरीर अकड़ चुका था। उसे ऐसे ही उठा कर ले जा रहे थे। सत्तर वर्षीय रधुली अब नहीं रही। सभी पुरुष अंत्येष्टि के लिए जा चुके थे। किसी का इंतज़ार नहीं किया गया। करते भी किसका? था ही कौन जो एक आखिरी बार उसे देखना चाहता होगा। जो थे गांव के लोग ही थे। किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि यह कैसे हुआ। बस अनुमान लगाए जा रहे थे।

"शीलन से हुआ होगा?" एक स्त्री ने कहा।

"हूं.... बैठने तक की जगह नहीं है। सारा चाख सिल्ल हुआ है। कैसे रह जाती होगी यहां। बाप रे!" दूसरी स्त्री ने चिंताग्रस्त भाव में कहा।

"इसीलिए कहते हैं कि भगवान चाहे जितना दुःख दे, पर संतानविहीन न रखे। आज एक बेटा होता तो इसकी ऐसी हालत थोड़ी होती। बेचारी! न संतान, न पति! इसका जीवन तो एक मसान जैसा था, भूत जैसी घूमती रहती थी यहां से वहां।" एक अन्य स्त्री बोली।

आज बहुत-सी बातें हो रही थीं रधुली के बारे में, वो भी इन लोगों के द्वारा जो उसके जीते जी न जाने कब आखिरी बार उसके घर के भीतर आए थे। इन्हें उसकी सहेलियां कह पाना थोड़ा मुश्किल है। रधुली भी नहीं कह पाती। ये लोग उसके बारे में गंभीरता से इतनी बातें कैसे कह पा रहीं थी पता नहीं। इससे पहले तो जब भी रधुली का ज़िक्र आता या तो हंसी के ठहाके लगते या फिर निंदा-स्तुति चलती।

रधुली चौदह साल की थी जब उसका ब्याह एक पैंतीस वर्षीय पुरुष से कर दिया गया। सत्रह साल में उसने एक बेटी को जन्म दिया पर वह बच न सकी। फिर दो बार और दो बच्चों को जन्म दिया लेकिन कोई भी न बच सका। बीस की हुई तो पति को हैजा ले गया। उसके बाद ससुर को भी। सास के साथ अन्य बीस साल गुजारे या कहें काटे। सास तो सास ही थी, सास ही बनी रही। एक भैंस, एक गाय, और खेती, सब रधुली की ही जिम्मेदारी थी। सास अपने लिए भोजन बना के खा लेती। रधुली कब खाती थी, क्या खाती थी, पता नहीं। खाती भी थी या नहीं, कुछ नहीं पता। पचास की हुई तो सास भी गुज़र गई। अब कहीं जाकर रधुली के लिए देश आज़ाद हुआ था। एक भैंस बेच दिया, खेती भी उतनी ही की जितनी आवश्यक थी। फिर भी यह सब उसकी मानवीय क्षमता से अधिक था।

खेती के अलावा आमदनी का कोई श्रोत नहीं था। अनाज की उपज भी अब न के बराबर होने लगी थी इसलिए उसने बोना ही छोड़ दिया। खेती से पैसे कमाने के लिए भी पैसे लगते हैं। मांग-मांग कर कोई बेल, या मिर्च के पौधे लगा देती, हो गये तो ठीक, वरना भोजन का स्वरूप तो उसका पेट लगभग भूल ही गया था। जब द्वार पर कोई गेरुआ चोगा पहन कर माँगता है तो उन्हें भिक्षुक जान कर खुशी-खुशी दान देते हैं। रधुली भी तो भिक्षुणी ही थी, इतने दशकों से और कुछ सुरक्षित रखा हो या न रखा हो लेकिन अपना चरित्र निरापद बनाए रखा। पर उसे

देते हुए कोई खुश नहीं होता था। एक अनचाहे बोझ-सी सबकी आँखों में खटकती रहती।

रधुली के बच्चे नहीं थे। वह बच्चों को पसंद भी नहीं करती थी और न ही बच्चे उसे। उसके बाड़े के ऊपर के खेत में खेलते बच्चे यही प्रार्थना करते कि गेंद रधुली के बाड़े में न चली जाए। छोटे से बाड़े में उसने लहसुन लगाया था। गेंद का तो धर्म है नुकसान करना। वह बाड़े में जाकर ही मानी। रधुली को न पाकर एक लड़का चुप-चाप गेंद लाने गया। गेंद बीचों-बीच थी, इसलिए बाड़े में घुसना ही पड़ा और दो-चार पौधे रौंदे गये। बच्चा गेंद उठा ही रहा था कि हाथ में लम्बी-कच्ची बेंत लिए रधुली न जाने कहाँ से प्रकट हो गई और एक बेंत ज़ोर से घुमाकर लड़के की पीठ पर दे मारी और गालियों से नहला दिया। रोते हुए बच्चा खीझकर ज़ोर से 'रधुली-भदुली' चिल्लाया और उसकी तरफ थूक दिया, जान-बूझकर दो-चार पौधे रौंदकर भाग गया। रधुली खड़ी-खड़ी कुछ क्षण चुप-चाप बच्चे को देखती रही, जवाब नहीं दे सकी। उसने बच्चे की आँखों में तिरस्कार की रेखा देखी थी। बस बेमन गालियां बोलती रही।

रधुली के गोशाले में अलग-अलग आकार के डिब्बे, बाल्टी और कुछ पुराने खंडित स्टीट-पीतल के बर्तनों का अम्बार लगा हुआ था। जैसे उसने शौकिया पुराने बर्तनों का कलेक्शन बनाने के लिए जमा किये हों। पूरे गाँव ने रधुली को पीठ-पीछे चोर घोसित किया हुआ था। उसके भय से कोई भी अपना सामान बाहर लावारिश छोड़ कर नहीं जाता था। अगर किसी का कोई भी सामान अचानक गायब हो जाए तो पहला और शायद आखिरी शक रधुली पर ही जाता। सीधे-सीधे तो उससे कह नहीं पाते परंतु घुमा कर कहने का भी कोई लाभ नहीं होता था। रधुली साफ-साफ कह देती कि चोरी का ख्याल तो उसके सपने में भी नहीं आता, यह उसके संस्कार नहीं हैं। और रही बात उन बर्तनों की, जो किसी की रंग-चूने की बाल्टी, कुत्ते-बिल्ली के खाने वाली थाली या डोंगा, या गाय भैंसों को खवाणी देने वाले भगौने में से एक थे, तो उन्हें वह यह सोचकर उठा लाती है कि जिसके हैं उसके किसी काम नहीं आने वाले, तो यह कोई चोरी में नहीं गिना जाएगा। उन लोगों के लिए नहीं पर रधुली के लिए ये सब बहुत काम के थे। चौमास के दो महीने और बाकी के साल की छिट-पुट बरखा में रधुली को अपने बच्चों से ज्यादा इनकी आवश्यकता पड़ती थी। बारिश के दिन रधुली के घर के भीतर पैर पसार कर बैठने की जगह नहीं रहती थी। इन टूटे-फूटे बर्तनों और रंग-बिरंगी बाल्टियों का जगह-जगह पर एक्सिबिशन-सा लगा रहता। टप-टप पानी के टपकने का शोर होता, फूटे हुए बर्तन से लिपे हुए चाख को गीला करती हुई पानी की गाढ़ होती, और भरे हुए बर्तनों को खाली करती, इधर से उधर नाचती हुई अधीर रधुली होती। और अन्य घरों में चौकड़ी जमाई हुई औरतों के बीच रधुली के, उसकी चोरियों के किस्से और ठहाके गूँजते, वे किस्से जिनको रधुली ने शायद कभी सुना ही नहीं। बारिश का दिन आराम का दिन होता है परंतु वह तो बारिश की छुट्टी में और व्यस्त हो जाती थी।

लोगों के फटे-पुराने कपड़े रधुली के लिए नए थे। उसके शब्दकोश में फटा-पुराना जैसा कोई शब्द था ही नहीं। साड़ी के छेद उसे दिखते ही नहीं थे। जहाँ

भी, जिसके भी घर वह जाती, वहाँ से कोई न कोई कपड़ा तो ले ही आती। जब कभी किसी शादी ब्याह में सबसे कम पुरानी साड़ी पहनकर जाती तो उस साड़ी की पूर्व स्वामिनी आकर सब सहेलियों में उसकी चर्चा करने लगती कि साड़ी कब ली थी, कहाँ से ली थी, कितने में ली थी, किसने दी थी। और पूरी चर्चा में रधुली की स्थिति उस पुतले के समान हो जाती जो कपड़े की दुकानों के बाहर कोई कपड़ा ओढ़े बस खड़ा ही रहता है बिना किसी भाव के, बिना किसी विचार के।

कभी रधुली कुछ सोचने बैठती होगी तो क्या सोचती होगी? किसी व्यक्ति के बारे में या किसी वस्तु के बारे में? कोई गहरा-सुनहरा सपना – ऐसा होता तो कैसा होता? काम करते-करते कुछ सोचती होगी? क्या उसने सोच-विचार को कभी समय दिया होगा? यदि कुछ सोचती भी होगी तो अपनी अल्प-आवश्यकतायें और उन्हे पूरा करने के अतरंगी उपाय ही सोचती होगी। किसी से मांगने की शर्म उसे थी नहीं पर लोगों के भीतर देने का अभिमान, आवेग और बदगोई बहुत अधिक थी। इतनी लम्बी ज़िंदगी उसने बिना कुछ सोचे ही बिता दी। जो कुछ सोचता ही नहीं उसके हृदय में कोई विकार हो सकता है क्या? रधुली आखिरी वक्त में भी कुछ नहीं सोच रही होगी। जीवन से उसे कोई शिकायत नहीं थी। उसके चेहरे से ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। वह बहुत गहरी नींद में होगी, न पानी की टप- टप सुन रही होगी और न ही मृत्यु की आहट।

"ए चम्पा! वो तेरी साड़ी थी न?" एक स्त्री ने रधुली द्वारा आखिरी समय में पहनी हुई साड़ी की ओर इशारा करते हुए कहा।

"हाँ! रमेश के लड़के के नामकरण की मिली थी। ज्यादा नहीं पहनी थी मैंने। समझो नयी ही दे दी थी इसे..।" चम्पा ने सहमति से कहा।

***

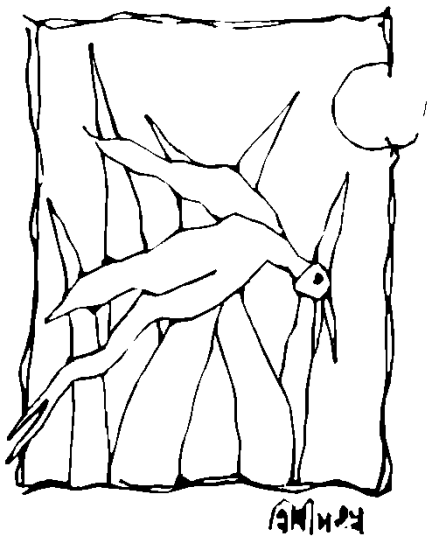

आशियाना

पूजा गुप्ता

आनन-फानन में रामेश्वरी ने अपना सामान बांध लिया और चलने को तैयार भी हो गई। गुस्से की इन्तहा इतनी थी कि मुंह से ना एक शब्द निकला, न ही बोल फूटा। मन ही मन बस क्रोध से उबल रही थी।

"ना अब इस घर में बिल्कुल नहीं रहूंगी। हद होती है किसी बात की। दो टके के माली की भी इतनी हिम्मत नहीं कि मुझसे मुंहजोरी करें?"

बेचारा हरिया माली गर्दन नीची करके गिड़गिड़ा रहा था,"अम्मा जी मुझे तो भैया ने ही हिदायत दी थी, गुलाब का फूल किसी को न तोड़ने दूं, सो मैंने जरा सा कह दिया था। इस गमले में से नहीं, उस गमले में से ले लीजिए।"

"जरा सा कह दिया," हमेशा गर्जन तर्जन करने वाली रामेश्वरी जी का स्वर भर्रा गया, "हमने फूल नहीं देखे या क्यारियां नहीं देखी। रायपुर में पांच कमरे का बंगला था हमारा। आगे लॉन, पिछवाड़े आंगन। इस तरह के फूल खिलते थे। हम ही देखभाल करते थे। यहां की तरह १०-१२ गमले नहीं थे। सुबह राजेश जी कितने ही फूल डोलची में चुन कर लाते थे और हम भोग के साथ ठाकुर जी पर चढ़ाते थे।"

"मां, ऐसा है," बेटा पारस उनके पास सरक आया और बोला,"कल हमने लंच पर अपने डायरेक्टर और चीफ ऑडिटर को आमंत्रित किया था। सोचा, गमले में लगे गुलाब सुंदर दिखेंगे इसलिए माली को समझा दिया था।"

पर रामेश्वरी जी जरा भी टस से मस नहीं हुई। घरवाले सभी उनके स्वभाव के आदि थे। जो कह दिया सो कह दिया। उनकी बात पत्थर की लकीर होती थी। टूट जाए, पर झुकेगी नहीं।

ना किसी का हस्तक्षेप बर्दाश्त करती, ना टोकाटोकी। रायपुर का पूरा घर उन्होंने अपने हिसाब से सजाया और संवारा। राजेश जी ने कभी दखलंदाजी नहीं की। घर के सभी सदस्य उन्हीं के बनाए कायदे कानून पर चलते।

रामेश्वरी जी स्वयं भी हर काम निपुणता से करने की आदी थी। सब की छोटी-बड़ी जरूरतों का ध्यान रखते हुए, सबको नियत समय पर सब कुछ प्रस्तुत करती। क्या मजाल, जो कभी कुछ भूली हो।

थोड़ी देर बाद वे कमरे में आकर पलंग पर लेट गई। मां की अधीरता कम नहीं हो रही थी। पति के रिटायरमेंट का समय नजदीक आया, तो उन्होंने कई बार राजेश जी से कहा था कि एक छोटा सा घर ले लेते हैं, क्योंकि वे उन समझदार लोगों में से थी, जो बेटे का विवाह होने के साथ ही अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उनसे अलग रहने में सुख महसूस करते हैं। वो अपनी जिंदगी जिएं, हम अपनी जिंदगी जिएं वाली युक्ति पर रामेश्वरी जी विश्वास करती थी। अपनी कई सहेलियों को देखा था उन्होंने, जब भी बेटे-बहू से अपने अनुभवों को ध्यान में रखते हुए बात करती, तो ताने के रूप में या फिर उलटबासी के रूप में। रामेश्वरी जी सोचती, क्या जरूरत है उन पर क्रोध करने की? आखिर बहू भी हाड़-मांस की बनी औरत है।

लेकिन इस विषय को लेकर पति से उनका हमेशा ही मतभेद रहा। कितना कहा पर राजेश जी अपनी ही ज़िद पर अड़े रहे, "दो-दो संस्कारी बेटे हैं मेरे। उच्च

पद पर आसीन हैं। मेरे दोनों हाथ हैं वे। उनके रहते हुए अपने मकान में रहने की सोच भी कैसे ली तुमने?"

राजेश जी जब रिटायर हुए तो उन्होंने नागपुर चलकर रहने की ज़िद ठान ली। बोले, "चलो वहीं चलकर रहते हैं। वहां हमारी अपनी हवेली है। बाबूजी छोड़ गए हैं। भाई-भाभी वही रहते हैं।"

पर वो ज़िद पर अड़ गई। तीन बरस हो गए नागपुर छोड़े हुए। ससुराल वालों से अलग-थलग रहने की अब तो ऐसी आदत पड़ गई थी कि महीना-बरस तो छोड़ो, सप्ताह भर रहना भी मुश्किल होगा। उनकी ज़िद मनवाने के लिए बच्चों ने भी पूरा साथ दिया था।

बड़ा बेटा शेखर उस समय लंदन में एक सॉफ्टवेयर कंपनी में काम करता था। प्रोजेक्ट के सिलसिले में अक्सर लंदन, अमेरिका, दुबई, मलेशिया जाता रहता था। उसने माता-पिता को कई बार विदेश भ्रमण कराया था। टिकट भेज देता और वो राजेश जी के साथ विदेश घूम आती। जगमगाती दुनियां देख आती।

छोटा बेटा पारस भी कोई कम नहीं था। प्रथम श्रेणी का उच्चाधिकारी था। राजधानी का अत्यधिक रुचि पूर्ण ढंग से सजा हुआ टैरेसवाला फ्लैट था उसके पास। एक गाड़ी कंपनी की तरफ से मिली थी, जिसे पारस दफ्तर ले जाता था और दूसरी छोटी गाड़ी बहू चलाती थी।

बेटा-बहू उनकी सुविधा का पूरा ध्यान रखते। उन्हें शिकायत का मौका नहीं देते। फिर भी बेटे की गृहस्थी में तारतम्य बैठाना थोड़ा मुश्किल हो रहा था उनके लिए। मसलन बेटी नूपुर "कोएड" मे क्यूं पढ़ती है और अगर मान भी ले कि यह लड़कों वाला कॉलेज अच्छा है, तो यह भी ज़रूरी तो नहीं कि कॉलेज से लौटने के बाद वो लड़कों के साथ बैठकर काम करे? वैसे कहती तो नूपुर यही है कि सब मिलकर प्रोजेक्ट तैयार करते हैं, पर क्या पता क्या करते हैं? उनकी सहेलियां बताती हैं कि कंप्यूटर पर जितना ज्ञान अर्जित किया जा सकता है, उतनी ही अश्लील चीज़े भी दिखाई देती हैं।

पर किससे कहे? बहू तो स्वयं ही समाज सेवा में व्यस्त रहती है और पारस १० बजे से पहले लौटता ही कब है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों में देर रात तक काम करने का प्रचलन है। सोचा, राजेश जी से बात करके देखें, पर बहू-बेटे की ज़िंदगी में हस्तक्षेप न करने का निर्णय स्वयं ही आड़े आ गया। कुछ नहीं कह पाती थी।

उधर राजेश जी ने अपने आप को सबके अनुसार ढाल लिया था। मजे से पोते-पोती के साथ क्रिकेट मैच देखते, पॉप म्यूजिक भी सुन लेते। उसके बाद सुबह-शाम की सैर में उनका खासा वक्त निकल जाता। उन्होंने कई लोगों से मित्रता भी कर ली थी, जिनके साथ वे ताश और शतरंज की बाजी भी खेल लेते।

रामेश्वरी जी सोच-सोच कर हैरान होती। अपने समय में सुपरिंटेंडेंट इंजीनियर के पद पर कार्यरत राजेश जी को अर्दली, ड्राइवर अधिशासी अभियंता, सहायक अभियंता सलाम ठोकते नहीं थकते थे।

ड्राइवर कार का दरवाजा खोलकर तब तक खड़ा रहता, जब तक कि वह गाड़ी में बैठ नहीं जाते थे। अब अपनी टेबल-कुर्सी तो क्या, बहू-बेटे के हाथ बंटाने के लिए घर के पूरे सामान की डस्टिंग कर देते। गमलों की गुड़ाई, रोपाई, तराई तक कर देते थे।

गरमागरम चाय बना देते, पोते- पोती के नोट्स तैयार कर देते।

रामेश्वरी जी सिर उठाती। साफ अविचलित स्वर में, एक-एक शब्द पर जोर देती हुई कहती, "बहुत सिर पर चढ़ा रखा है तुमने बहू को। अपने दिन भूल गए, जब शेखर और पारस छोटे थे। क्या मजाल जो कभी बच्चों को गोद में उठाया हो। अम्मा जब कभी आती, उनके इर्द-गिर्द ही घूमते रहते थे तुम। मैं अकेली जान बच्चों को भी संभालती और तुम्हारे रिश्तेदारों की खुशामद भी करती। अब देख रही हूं, सुबह-शाम पोते-पोतियों में ही रमे रहते हो।"

रामेश्वरी, सुना तो होगा तुमने मूल से ब्याज ज्यादा प्यारा होता है," राजेश जी इतना कह कर ही बात समाप्त कर देते थे। रामेश्वरी जी को कोई जवाब नहीं सूझता था तब।

वह अपने वर्चस्व को हमेशा बरकरार रखने की, अपना महत्व जताने की आदत से मजबूर थी। इससे पहले उन्हें घर के सभी सदस्यों से खास कर अपनी मां-बहनों से या भाभियों से आदर-सम्मान मिलते आया था। रायपुर में भी अपने घर पर पूरा आधिपत्य था उनका। अपनी ही मर्जी के मुताबिक चलाया अपना घर-संसार। इससे उनके अहं को संतोष मिलता। कभी किसी ने तर्क नहीं किया। अब बेटे के घर आकर उन्होंने देखा कि सभी अपनी-अपनी दुनिया में मगन हैं, तो वे स्वयं को उपेक्षित महसूस करने लगी थी। उन्हें लगता कोई उन्हें प्यार नहीं करता, कोई उनकी बात नहीं सुनता। अपना मकान होता, तो उन्हें यों बात-बेबात घुलना नहीं पड़ता। यहां पड़े हैं, दूसरों की गृहस्थी में।

"मां हम बाजार जा रहे हैं। कुछ मंगाना तो नहीं?" बहू नमिता ने सास की इच्छा जाननी चाही। पर रामेश्वरी जी चुप। मुंह बना ही रहा।

"पापा आपको कुछ मंगाना है?"

"अरे इन्हें क्या मंगवाना होगा? जो कुछ चाहिए होता है, ड्राइवर और नौकरों से ही मंगवा लेते हैं। एक हम ही हैं, जिसे कोई नहीं पूछता।"

"मां, आपकी पसंद-नापसंद का पूरा ध्यान रहता है हमें। आपको शिकायत का मौका ही कहां देते हैं हम?" बहू की आवाज़ में रूष्टता का पुट था।

घर से बाहर निकली, तो राजेश जी बोले, "हो गई तसल्ली। कितनी बार कहा है, जहां रहो खुश रहो। दूध में शक्कर की तरह घुल जाओ। यह घर किसी और का नहीं, बहू-बेटे का घर है। अगर चाहो, तो अपना घर भी समझ सकती हो। पर नहीं, जब तक बात का बतंगड़ ना बनाओ चैन नहीं मिलता तुम्हें।"

बहू की गाड़ी स्टार्ट होने की आवाज़ सुनाई दी, मन ही मन पछताने लगी थी रामेश्वरी जी अगर क्षणिक आवेश में आकर रायपुर लौटने का निर्णय ना लेती तो यहां अकेली ना बैठी होती। बहू उन्हें रोज कहीं ना कहीं घुमा ही लाती थी और वो कभी चूड़ी, कभी साड़ी, कभी बिंदी के पैकेट अपनी मर्जी से ले ही आती थी। अकेले चाट-पकौड़ी खाने में उन्हें लाज आती सो बहू के साथ चली जाती चंदू चाट भंडार। लौटते में राजेश जी के लिए भी पैक करा कर ले आती दोनों।

अब रायपुर जाने की बात मुंह से निकाली थी, तो पीछे कैसे हटती। बोली, "ठीक है, मैं ही बुरी हूं। तभी चलने की कह रही हूं। चलो, तुम भी चलो।"

"कहां?"

"रायपुर। किराये का मकान ले कर रह लेंगे।"

"तुम जाओ। मैं नहीं जाऊंगा।"

रामेश्वरी जी हतप्रभ सी पति का चेहरा निहारती रह गई। पति से ऐसे असहयोग की उन्होंने सपने में भी उम्मीद नहीं की थी। उनका आत्मबल जैसे घट सा गया। रायपुर जाकर अकेले तो क्या, पति के साथ रहने का भी दमखम कहां था उनमें? यहां पका-पकाया मिलता था। पोते-पोतियो में रमी बैठी थी। ऊपर से चाहे नाक पर मक्खी न बैठने दे, पर बहू की किटी पार्टी की सहेलियों में भी मन लगा रहता था उनका। अब तो तंबोला भी खेलने लगी थी। थोड़ा बहुत ताश का भी ज्ञान हो गया था।

आज का ताजा अखबार उठाकर पन्ने पलट रही थी कि सामने रोशनदान पर तिनका बटोर कर घोंसला बनाती चिड़िया की ओर ध्यान चला गया, " बेचारी काफी दिनों से मेहनत-मशक्कत में जुटी हुई है," दया से उनका मन द्रवित हो उठा। चिड़ा कैसे ठसक कर बैठा रहता है और चिड़िया बेचारी ना जाने कहां से घास-फूस बटोर कर लाती है। अनजाने में अपनी गृहस्थी की तुलना चिड़िया के घोंसले से कर बैठी। ब्याह करके आई, तो राजेश जी की कोई विशेष आमदनी नहीं थी। राजेश जी पूरी तनख्वाह लाकर उनकी हथेली पर रख देते। जितना चाहे खर्च करो, जितना चाहे बचाओ। अपनी क्षमता से बढ़कर उन्होंने अपनी गृहस्थी को सजाया- संवारा। बच्चों को पढ़ाया लिखाया। उस जमाने में प्रतिमाह माता-पिता को भी पैसे भेजने पड़ते थे। ननदों, देवरों के ब्याह में भी खासा पैसा उठ जाता था।

रामेश्वरी जी ने अपने दहेज में दिए गहने तक ननदों के ब्याह में चढ़ा दिए। बच्चों के विवाह, छठी, मुंडन तक क्या नहीं निभाया? खैर, अब तो सब निबट गया। इतना सब करने के बाद भी कोई कमी तो नहीं? बच्चे अपनी-अपनी गृहस्थी में खुश हैं। बेटे अच्छे हैं, बहुएं भी अच्छी हैं। संस्कारी व अच्छे परिवारों से आई हैं। मोटर-गाड़ी, बंगला सब है। बस नहीं बना तो अपना घर। एक यही इच्छा रह गई उनकी। मन उदास हो गया अपने घर की बात सोचकर। रामेश्वरी जी कई बार सोचती, "अपना घर होता, तो रसोई से लेकर लॉन तक उनका एकछत्र राज रहता। यहां चौके में किशन बैठा रहता है। सामिष-निरामिष सभी प्रकार का भोजन पकता है। चाइनीज, मंचूरियन और भी न जाने क्या-क्या!' रामेश्वरी जी के मुंह का स्वाद कसैला हो गया।

फिर भी ईश्वर का धन्यवाद किया उन्होंने शरीर सलामत है, तो पति का पूरा ध्यान रख पाती है। नाश्ते से लेकर शाम के खाने तक उन्हीं की सेवा-टहल में लगी रहती थी। कभी-कभी बच्चे भी गाजर का हलवा और मठरी की फरमाइश करते, तो बड़ा आनंद मिलता उन्हें।

अगले दिन थोड़ा बहुत काम निबटाकर वे फिर पलंग पर बैठकर चिड़िया के घोंसले को निहारने लगी। हर दिन चिड़िया अंडों को सेती। आज तो शायद नन्हे बच्चे भी निकल आए थे, क्योंकि घोसले में से चीं-चीं का स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहा था। चिड़िया का काम और भी बढ़ गया था। पहले तिनके दबाकर लाती थी, अब दाना चुग कर लाती है। एक बच्चे के मुंह में डालते ही दूसरा बच्चा चीं-चीं करने लगता। चिड़िया फुर्र से उड़ जाती, क्योंकि उसे तो सभी बच्चों को संतुष्ट करना था।

रामेश्वरी जी का हृदय ममता से हिलोरे लेने लगा था। किशन को कहकर उन्होंने मिट्टी के सकोरे में चावल के दाने रखवा दिए। चिड़िया का काम थोड़ा कम हो गया। सकोरे में से दाना निकालती और बच्चों के मुंह

में डाल देती। चिड़ा कभी-कभार ही नज़र आता। यह सब देखकर रामेश्वरी जी रायपुर जाने की बात जैसे भूलती जा रही थी।

एक सप्ताह से वे वायरल फीवर में पड़ी थी। बुखार १०३ डिग्री से नीचे ही नहीं उतर रहा था। पारस, नमिता बच्चों ने मिलजुल कर उनकी सेवा की। रात-दिन बारी-बारी से उनके पास बैठे रहे। बुखार ८ दिन बाद उतरा, तो वे बालकनी में आकर बैठ गई। किशन जूस का गिलास टेबल पर रखने लगा, तो उनकी दृष्टि रोशनदान पर अटक गई। बोली, "किशन घोंसला कहां गया?"

"वहीं तो है मां जी।"

"चिड़िया कहीं दिखाई नहीं दे रही।"

"पक्षी है मां जी। दाना चुगने चली गई होगी।"

"और उसके बच्चे?"

"उड़ने लायक हो गए, तो फुर्र से उड़ गए। अब उन्हें चिड़िया की जरूरत थोड़े ही है।"

"और चिड़ा?" रामेश्वरी जी का मन दुविधा से त्रस्त हो उठा।

"वो किसी दूसरी चिड़िया की तलाश में निकल गया होगा," हंस कर कहता हुआ किशन कमरे से बाहर निकल गया। उन्होंने देखा बेचारी चिड़िया घोंसले के बाहर बैठी थी। प्रतीक्षारत आंखें कभी द्वार पर अटकती, तो कभी रोशनदान पर। लेकिन ना बच्चे वापस लौटे, ना चिड़ा। किशन ठीक ही तो कह रहा था, एक बार उड़ने की शक्ति आने पर वे भला क्यों लौट कर आएंगे।

थोड़ी ही देर में नमिता मल्टीविटामिन के कैप्सूल और दूध का गिलास रख कर गई। पारस डॉक्टर से मां की तबीयत के विषय में बात कर रहा था। उसने मां की पूरी जांच कराने की डॉक्टर से पेशकश की, तो रामेश्वरी मना करने लगी थी, "क्यूं पैसे बर्बाद कर रहा है? अब मैं ठीक हूं।"

"मां, विदेश में आपकी उम्र के लोगों का हर तीन माह में चेकअप होता है, मैंने पापा और आपके चेकअप के लिए डॉक्टर का अपॉइंटमेंट ले लिया है। गाड़ी भिजवा दूंगा। नमिता ले जाएगी आप दोनों को। तसल्ली हो जाएगी मुझे।"

रामेश्वरी जी सोचने लगी 'उनका घर उनका खून तो यही है, वे किस सुख की तलाश में रायपुर लौट रही थी। बच्चों की आंखों में झरता हुआ वात्सल्य देखकर उन्हें लगा कि उन्हें किसी नए आशियाने की तलाश नहीं। वे तो अपने पति और बच्चों के साथ संतुष्ट-तृप्त है।

***

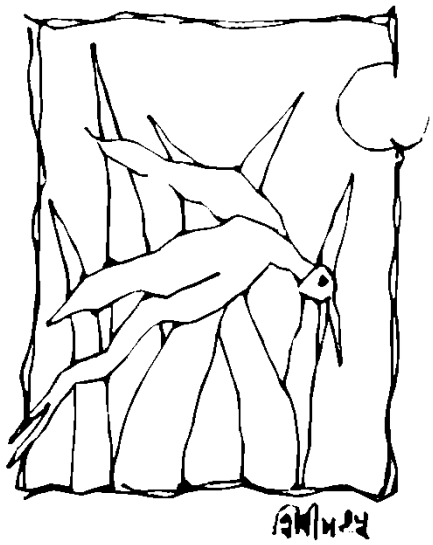

'एक देश बारह दुनिया' रिपोर्ताज के बहाने विकासात्मक विरोधाभास पर एक निगाह

दीक्षा मेहरा

'एक देश बारह दुनिया' पत्रकारिता के क्षेत्र में लम्बे समय से रिपोर्ताज विधा की उपेक्षा को एक नया रचनात्मक आयाम देता हुआ बेहद महत्वपूर्ण रिपोर्ताज है। इसमें शिरीष खरे सूत्रधार बनकर बेहद ईमानदारी से आम आदमी के जीवन की दौड़धूप और संघर्ष तक पाठकों को पहुँचाने के लिए कई किलोमीटर यात्रा कर लोगों से मिलते हैं, उनकी निजी जिंदगी में अपनों की तरह शामिल हो कर, व्यवस्था और समाजिक विरोधाभास से त्रस्त लोगों की हृदय पसीज़ देने वाली सच्ची घटनाओं तक पाठकों को ले जाते हैं। इसी क्रम में पाठक लेखक के साथ कदम बढ़ाते हुए उन बारह दुनियाओं को देखते हैं जिन्हें या तो जानबूझकर या अनजाने में वे अभी तक अनदेखा करते आए हैं। शिरीष खरे ने विगत वर्षों में पत्रकारिता के दौरान जिस विकासात्मक विरोधाभास, अभाव, गुमनामी को देखा, अनुभव किया उसे ही इस पुस्तक में 12 रिपोर्ताजों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। पुस्तक की पुश्त पर लोकप्रिय सामाजिक कार्यकर्ता व लेखक हर्ष मंदर की सार्थक टिप्पणी है- **''जब मुख्यधारा की मीडिया में अदृश्य संकटग्रस्त क्षेत्रों की ज़मीनी सच्चाई वाले रिपोर्ताज लगभग गायब हो गए हैं तब इस पुस्तक का सम्बन्ध एक बड़ी जनसंख्या को छूते देश के इलाकों से है जिसमें शिरीष खरे ने विशेषकर गांवों की त्रासदी, उम्मीद और उथल-पुथल की परत-दर-परत पड़ताल की है।''**

पुस्तक में **'जिंदगी बुनते थे वो बिखर गए'** एक ऐसा वाक्य है जिसे पढ़ते ही भारत में प्रगति के नाम पर अमूल्य संस्कृति के लगातार हो रहे बिखराव का स्मरण हो आता है और ज़ेहन में एकाएक अनेक प्रश्न उठने लगते हैं कि- क्या प्रगति के कोई मायने हो सकते हैं? यदि हां, तो किस दिशा में बढ़ने को प्रगति कहा जाना चाहिए? घास-मिट्टी-पत्थर से बने घरों का सीमेंट में तब्दील हो जाने को, या सौंदर्यीकरण के नाम पर शहरों से झोपड़पट्टीयों के विस्थापन को, या फिर ऊँची-ऊँची बहुमंजिला इमारतों के ढ़ेर को, या फिर यातायात साधनों की चकाचौंध, रातभर जगमगाती रोशनी, परंपरागत आहार-मूल्यों, उपचार-विधियों की उपेक्षा कर नवीन विकसित मूल्य, उपचार विधियां आदि क्या प्रगति के मायने हो सकते हैं? वर्तमान के इसी विरोधाभास को अभिव्यक्त करती विनोद कुमार शुक्ल कविता-

''आदमी के विचार तेज़ी से बदल रहे थे।
लेकिन उनकी तेज़ी से रद्दीपन इकठ्ठा हो रहा था।
रद्दीपन देर तक ताज़ा रहेगा।
अच्छाई तुरंत सड़ जाती थी।''

इसी तरह यदि विकास के, प्रगति के कोई मायने, कोई मापदंड हो सकते हैं तो वो किसी देश की धरातलीय शिक्षा, आम आदमी की अर्थव्यवस्था में सुधार, हासिए पर छूटे लोगों के बीच सामाजिक समानता, स्वस्थ्य विचारधारा, नवीनतम तकनीकों की गुणवत्ता, आम नागरिकों तक उसकी आसन पहुँच और उपयोग, गुणवत्तापूर्ण जल और वायु,

प्राकृतिक संसाधनों की देखभाल, रोगों का प्रतिशत, स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच, मृत्यु दर और जीवन की गुणवत्ता हो सकती है। किन्तु भारत के वर्तमान परिदृश्य पर जब हम विकासात्मक विरोधाभास की दृष्टि से निगाह डालते हैं तो देखते हैं ऐसा बहुत कुछ संरक्षणीय था जिसे विकास के नाम पर हम खोते चले गए। 'एक देश बारह दुनिया' में शिरीष खरे भारत में विकासात्मक विरोधाभास और अमूल्य धरोहर की उपेक्षा की पीड़ा को अभिव्यक्ति देते हैं-

जो तिनका-तिनका जोड़कर
जिंदगी बुनते थे
वो बिखर गए।
गांव-गांव टूट-टूटकर
ठांव-ठांव हो गए।
अब उम्मीद से उम्र
और छांव-छांव से पता
पूछना बेकार

रिपोर्ताज की ये पंक्तियों मुझे उस महान भारत की याद दिलाती हैं जहां प्रकृति के अनूकूल घास-मिट्ट-पत्थर के घर हुआ करते थे, शाकाहारी और मांसाहारी दो तरह की स्वाद दृष्टियां थीं, कर्म के आधार पर वर्णों का विभाजन, कृर्षि एवं पशुपालन जीवन का मूल आधार। रोग-व्याधि के उपचार के लिए अनंत जड़ी-बूटियों का ज्ञान था, नैतिक मूल्य थे, विभिन्न आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषाई विविधताएं थीं तो समानताएं भी थीं। कई जीवन शैलियों को अस्तित्व था। हमारे पूर्वजों के पास जीवन की अकूत संपदाएं थीं कुमार अंबुज के साथ हम सब को भी अपने पूर्वजों के प्रति नतमस्तक होना चाहिए-

हमें पूर्वजों के
प्रति नतमस्तक होना चाहिए
उन्हें जीवित रहने की अधिक
विधियां ज्ञात थीं
जैसे हमें मरते चले जाने की ज्यादा
जानकारियां हैं।

विगत वर्षों में अर्थव्यवस्था में सुधार, जी.डी.पी. में वृद्धि का दावा किया जाता रहा है, सड़क, रेल, पुल, ऊर्जा, बिजली-उत्पादन और वितरण, टेलीकॉम, तकनीकी क्षेत्र में विशेष उन्नति, आत्मनिर्भर भारत, स्टार्टअप, नवाचार, डिजिटल शिक्षा, डिजिटल यातायात, गरीबी कम करने जैसी बातें तो हमें अक्सर हर प्लेटर्फाम पर सुनने, देखने, पड़ने को मिल ही जाती हैं, किन्तु भारत में गरीबी की चुनौतीपूर्ण सामाजिक परिस्थितियां, सामाजिक-आर्थिक असमानता, जातिवाद, धार्मिक विवाद, विकास के लाभों से वंचित लोगों-समुदायों, अनियमित मौसम परिवर्तन, किसानों की समस्याएं, सांस्कृतिक संकट आदि पर सार्थक बहस-पहल-योजनाएं सभी स्तरों- सरकार, संगठन तथा आम नागरिकों के बीच कम ही देखने को मिलती हैं। वर्तमान में भारत विश्व भर में शिक्षा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी अन्य कई क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है। बावजूद इसके यह भी सत्य है कि भारत के कुछ हिस्से अज्ञानता, शिक्षा, व्यावसायिक और गैर-तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में अभावों का सामना कर रहे हैं।

'एक देश बारह दुनिया' पुस्तक का हर एक रिपोर्ताज पाठक के समक्ष इसी विकासात्मक

विरोधाभास का खुलासा करते हुए ज़मीनी हकीक़त से रूबरू करवाते हुए गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, राजस्थान, बुंदेलखंड, तेलंगाना, कर्नाटक के दूर-दराज़ के अंचलों की भयावह यथार्थ तस्वीर पेश करता है। मेलघाट पर लिखे रिपोर्ताज में जब शिरीष खरे लिखते हैं- **"वह कल मर गया, तीन महीने भी नहीं जिया। "एक मां के मुँह से सपाट लहज़े में अपने मासूम बच्चे की मौत की ख़बर सुन मैं भीतर तक हिल गया।"** तो भारत में जगह-जगह पर कई मेलघाट उभर आते हैं, मासूम बच्चे अलग-अलग कारणों से दम तोड़ते नज़र आने लगते हैं, मुझे नैनीताल से महज 7 किलोमीटर दूर किन्तु पैदल मार्ग, सड़क-स्वास्थ्य केन्द्र की उचित पहुँच से दूर प्रसवपीड़ा के दौरान शिशु गर्भ में ही दम तोड़ता दिखाई देता है। रिपोर्ताज में आगे शिरीष खरे लिखते हैं **"सरकार मौतों का आंकड़ा मानने को तैयार है, बस इस बात पर राज़ी नहीं कि ये सभी मौतें भूख से हुई हैं। मेरे पास साल-दर-साल सरकारी आंकड़ों का हिसाब है, उसके मुताबिक मेलघाट में हर साल छह साल तक के औसतन छह सौ से ज़्यादा बच्चों की मौत हो रही है।"** मेरी दृष्टि में बच्चों की मृत्यु के पीछे जो मुख्य कारण हैं एक तो अस्पताल में प्रसव के प्रचार-प्रसार से दूर-दराज़ गांवों में अब प्रसव का कौशल रखने वाली वो मांए भी नहीं रह गयी हैं जो प्राचीन भारत में हजारों सालों से प्रसव कराती आ रही थीं, दूसरा विकसित भारत में दूर-दराज़ के समूदाय और आदिवासी समूह जो हज़ारों सालों से अपना पोषण स्वयं करते आए हैं आज वह अपनी समृद्ध अहार संपदा की उपेक्षा करते हुए कुपोषण तक पहुँच गए हैं। मेरी दादी की नौ संताने थी, दादी बताती हैं दादा जी के आकस्मिक निधन के समय नौवां शिशु मात्र दो माह का था, उन्होंने उन नौ संतानों का पालन-पोषण अपने दम पर किया। कोई कुपोषण का शिकार नहीं हुआ। और नौ की नौ संतानों का प्रसव भी दायी मां ने किया। मेलघाट में शिरीष खरे बताते हैं- **"यहां के कई जवान बेटे, बहू अपने परिवार के बुज़ुर्ग और छोटे बच्चों कों यहीं छोड़कर काम की तलाश में अमरावती और दूर-दराज़ के मैदानी इलाकों की ओर चले जाते हैं, दरअसल, संघर्ष ही यहां ईमानदारी की एकमात्र परिभाषा है।"** कोरकू जनजाति के संदर्भ में इस सत्य को पढ़ने के बाद जब मैंने जिज्ञासावश कोरकू जनजाति का इतिहास पढ़ा तो यह ज्ञात हुआ कि इस समुदाय की एक विशिष्ट संस्कृति है, इसके पास आहार, चिकित्सा, पर्यावरणीय ज्ञान, विश्वास, रीति-रिवाजों, सामाजिक व्यवस्था और जंगलों के बीच जीवन जीने की सदियों पुरानी पारंपरिक समृद्ध विरासत है। किन्तु आज यही जनजाति अपनी जड़ों से कटते हुए कुपोषण तक जा पहुँची है। मेलघाट के कालूराम स्वयं इसे स्वीकार करते हुए बताते हैं- **"उनके ज़माने में सालगिरी, गालंगा और आरा की भाजियां थीं, जो अब कम ही खाई जाती हैं। शहद, चिंरौजी और महुआ की भरमार थी। बेदंदी को चावल की तरह उबालकर खाते थे। काला गदालू, बैलकंद, गोगदू और बाबरा जैसी कच्ची खाई जाने वाली चीज़े खूब मिलती थीं। ज्वास नाम की बूटी को उबली सब्ज़ी में डाल दो तो वह तेल की तरह काम करती थी। इसी तरह तेंदू, आंवला, महुआ, हिरडा जैसे फलों के पेड़ थे। खेती के लिए कोदो, कुटकी, जगनी, भल्ली, राठी, बड़ा आमतरी, गड़मल ओर सुकड़ी के बीज थे, जो बंजर ज़मीन पर भी उग जाते थे।"** ये सच्चाई केवल कोरकू जनजाति की ही नहीं भारत के कई

इलाकों की है। विकास के नाम पर बिना सोचे-समझे हम नवीन खान-पान को अपने अहार को हिस्सा बनाते गए। हमारे कुमाऊँ में भी अब पोषक तत्वों से भरपूर झुंगर (एक प्रकार का चावल), जौ, बाजरा, गेठी आदि कई खाद्य ना मात्र ही दिखाई देने लगे हैं और इन्हें खाने के लिए उपयोग करने वाले भी। असल में मात्र कोरकू ही नहीं भारत में कई समुदाय अपनी परंपरागत समृद्ध जिविका की उपेक्षा कर प्रगति के नाम पर कुपोषण, पलायन, गरीबी, अलगाव, कुण्ठा, संत्रास झेलने को विवश हो रहे हैं। इन समुदायों की 'डार्क (अंधेरी दुनिया)' के कुछ ये स्वयं तो कुछ सरकार उत्तरदायी है जैसा शिरीष खरे लिखते हैं कि **"यहां के अस्पताल में आपातकाल की स्थिति में इलाज की विशेष व्यवस्था नहीं है। ऐसे मरीज़ और साठ किलोमीटर दूर धारणी के बड़े सरकारी अस्पताल पहुँचाए जाते हैं।"**

पुस्तक में दूसरा रिपोर्ताज 'पिंजरेनुमा कोठरियों में ज़िन्दगी' कमाठीपुरा पर आधारित है। तमाम नारी चेतना, स्त्री विमर्श, परिवर्तन के लंबे दौर के बावजूद स्त्री समाज का एक ऐसा वर्ग है जिसकी स्थिति जस की तस बनी हुई है। रिपोर्ताज में शिरीष खरे लिखते हैं- **"बेला, चंपा, गोमती, दुर्गा, जया, कुसुम, माधुरी, सुब्बा, जोया, मोनी और नगमा जैसी कई लड़कियां निम्न-वर्गीय परिवार से हैं। इनमें से कई लड़कियां कम उम्र में ही भारत के छोटे-छोटे गांवों और कस्बों से बरगलाकर लाई गई हैं। इसके अलावा कोई प्यार में धोखा खाई हुई है, कोई नौकरी के झांसे में फँसकर रह गई है, किसी के घरवाले ने ही मजबूर कर दिया है, किसी को दलाल ने नरक का रास्ता दिखाया है। इन पिंजरेनुमा कोठरियों में हम जैसे ग्राहकों के घुसने के कई दरवाज़े हैं, चढ़ने की कई सीढ़ियां हैं। लेकिन, यहां से इन लड़कियों के निकलने के रास्ते आसान नहीं हैं।"** हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद से लेकर यशपाल, कमलेश्वर, श्रीकांत, राजेन्द्र अवस्थी जैसे प्रसिद्ध लेखकों ने वेश्यावृत्ति की समस्या को उजागर किया है। किन्तु आज भी कई संघर्षों, अन्तरद्वंद्वों के बीच लड़कियों का जीवन महज आधी बेटी, आधी प्रियसी, अधूरी पत्नी, अधूरी मां बनकर ही रह जाता है। इन सीलन भरी कोठरियों में पुलिस के दबाव, दलालों की मनमानी, यौन रोग, समाज और मकान मालिकों के दबाव तले इनकी हालत बिगड़ती चली जाती है। रिपोर्ताज में वेश्याओं की इन्हीं दुर्दशाओं का सजीव चित्रण किया गया है। लेखक द्वारा समाज और व्यवस्था से पूछा गया प्रश्न कि क्या मुम्बई में कमाठीपुरा की बदनाम कहीं जाने वाली गलियों और वहां के कोठरीनुमा कमरों में नारकीय जीवन बिता रहीं हज़ारों सेक्सवर्कर महिलाओं के लिए एक ठोस योजना हो सकती है, जो उनकी अगली पीढ़ी को नया रास्ता दिखा सके। वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण और विचारणीय प्रश्न है। इन्हें समाज में कब सामान्य महिला की स्वीकृति मिलेगी यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है।

पुस्तक में तीसरा रिपोर्ताज 'अपने देश के परदेसी' पाठक को कनाडी बुडरूक, महाराष्ट्र की ओर ले जाकर भूरा गायकवाड़ के मिलवाता है जो कहते हैं- **"तुम भटकते हुए यहां पहुँचे हो तो लौटने के लिए तुम्हारे दिमाग में कोई घर घूम रहा है! हमारे दिमाग में काई घर नहीं घूमा करता था।"** भारत में कई घूमन्तु समुदाय हैं जो प्राय: भूमिहीन हैं और समाज में रोजगार देने वाली शिक्षा से भी वंचित हैं

तिरमली घुमन्तु जनजाति की बस्ती में घूमते हुए शिरीष खरे ने घुमन्तु समुदायों के दु:ख, दर्द, संघर्ष को लिखा है- **"इस व्यवस्था में इन्हें मज़दूरी के लिए भी जगह नहीं। ..... नंदी बैल पर गृहस्थी लटकाना और गाना-बजाना तिरमली बंजारों की पहचान रही है। इसके अलावा, तिरमली महिलाएँ चूड़ियाँ और जड़ी-बूटियां बेचती आई हैं। लेकिन, इनका यही अतीत इनके वर्तमान के सामने पहाड़-सा आकर रास्ता रोक रहा है।.....ऐसे में इनके लिए स्थायी आवास की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है, पर बंजारे अपने ही देश में परदेसी की तरह रह रहे हैं, जिन्हें समाज ने आज तक न सही स्थान दिया है और न उचित मान-सम्मान। घर, बिजली, पानी, राशन, स्कूल और अस्पताल कौन नहीं चाहता! लेकिन, इनके चाहने भर से ये सब नहीं मिल जाता है। सामान्यत: सरकार को इनकी नागरिकता का सबूत चाहिए होता है, एक ऐसे कागज़ के टुकड़े पर जो सिद्ध करता हो कि वे कहां रहते हैं। अनपढ़ बंजारे कभी कागज़ों से नहीं जुड़े, घुमन्तू परिवार कौन-सा कागज़ लाकर अफ़सर के सामने सिद्ध करें कि उनका घर यहां है! इसलिए, आमतौर पर इनके पास राशन, मतदाता, पैन, आधार जैसे सिविल सोसाइटी की पहचान बताने वाले नंबर या कार्ड नहीं होते।"** इसी भारत में इन जैसे कई समुदायों की अदृश्य दुनिया भी है जो मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित हैं। लेखक से पता चलता है कि इस तिरमली समुदाय के बच्चों के रोल मॉडल रमेश फुलमारी और रामा फुलमारी हैं क्योंकि रमेश फुलमारी पुलिस में है और रामा फुलमारी राज्य परिवहन बस की कंडक्टर है। ये वास्तविकता केवल तिरमली समुदाय की ही नहीं भारत के कई गावों, कई समुदायों की है। जिसे कृष्ण कल्पित इस तरह अपनी कविता में अभिव्यक्ति देते हैं-

खेत जोतने वाले मज़दूर
लोहा गलाने वाले लुहार
बढ़ई मिस्त्री इमारतसाज़
मिट्टी के बरतन बनाने वाले कुम्हार
रोज़ी-रोटी के लिए
पूरब से पश्चिम
उत्तर से दक्षिण
हर सम्भव दिशा में भटकते
रहते थे
ये भूमिहीन लोग थे
सुई की नोक बराबर भी
जिनके पास भूमि नहीं थी
बस-रेलगाड़ियाँ लदी
रहती थीं
इन अभागे नागरिकों को
अब कहीं दूर-देश जाने की
ज़रूरत नहीं थी
अपने ही देश में
निर्वासित थे करोड़ों लोग

वर्तमान भारत की मीडिया में कभी-कभार इस तरह के मुद्दे उठते भी हैं तो मात्र औपचारिकतावश और सूचनाओं तक सिमट कर रह जाते हैं, विकास के दावों, प्रशासन की उदासीनता, योजनाओं का धरातल पर क्रियान्वयन, सत्ता और कॉर्पोरेट के गठजोड़ को लेकर सार्थक बहस होनी चाहिए जो न के बाराबर होती है। इसी संदर्भ में केदारनाथ सिंह और उनकी कविता याद आती है-

“चुप्पियां बढ़ती जा रही हैं
उन सारी जगहों पर
जहां बोलना जरूरी था
बढ़ती जा रही हैं वे
जैसे बढ़ते हैं बाल
जैसे बढ़ते हैं नाखून
और आश्चर्य कि
किसी को गड़ता तक नहीं”

पुस्तक में चौथा रिपोर्ताज ‘कोई सितारा नहीं चमकता’ महाराष्ट्र के आष्टी गांव का है। जिसमें विकास और अत्याधुनिक उपकरणों के समक्ष परंपरागत मदारी समुदायों के खेल फीके पड़ पाते हैं। रिपोर्ताज में इस समुदाय के संघर्षों का मार्मिक वर्णन है- **“काई आठ-दस बरस की बच्ची जानती थी कि वह जितनी बार रस्सी पर पैर धर उछलेगी, उतनी बार उसकी जान हवा में तैरेगी। फिर भी, दो बड़े खंभों के बीच बँधी एक रस्सी के ओर-छोर तक चल-चलकर वह चौराहे पर जमा भीड़ के आगे तमाशा दिखा रही थी।”** इनके करतब देखकर मनोरंजन करती भीड़ का कभी इनके संघर्ष और जीवन सुरक्षा की ओर ध्यान नहीं गया और अब तो ये अपने खेल और पहचान से भी दूर होते जा रहे हैं। जादू जैसे दिखाई देने वाले इन खेलों के पीछे जो संघर्ष है उस तक लोगों की पहुँच तो बहुत दूर की बात है आज तो इनके सामने पहला संकट रोजी रोटी का है- **“स्टंट ही सैय्यद मदारी की पहचान है। लेकिन, आज की तारीख में सैय्यद मदारी के खेल गुम हो रहे हैं। ढूँढे से इन खेलों के कद्रदान नहीं मिल रहे हैं। खुली जगहों पर जान का जोखिम उठाकर घंटों खेल दिखाने के बावजूद इन खिलाड़ियों को कुछ देने की बजाय ज़्यादातर लोग खिसक लेते हैं। ये मदारी विकास की तकनीक की अंधी दौड़ में छूट रहे हैं। मनोरंजन के अत्याधुनिक उपकरणों के सामने इनके जादू फीके पड़ने लगे हैं।”** इन समुदायों के समक्ष इससे भी बड़ी एक और चुनौती है महाराष्ट्र के जाति आयोग के रिकॉर्ड में ‘सैय्यद मदारी’ जाति का नाम ही नहीं है- **“जाति प्रमाण-पत्र पाने की लड़ाई लड़ने में दस साल गुज़र गए। इसके लिए ज़िला बीड़ से लेकर राज्य की राजधानी मुंबई तक वे लोग एक कर चुके, पर कोई फ़ायदा नहीं।”** अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इन बच्चों के भविष्य के लिए कोई विशेष संरक्षण व्यवस्था तैयार की जाएगी या फिर ये हमें यू ही सड़कों पर घूमते, भीख मांगते, कूड़ा बीनते और छोटी उम्र में नशा करते दिखाई देंगे। इस संदर्भ में कंवल भारती का यह कथन उचित ठहरता है- **“हम नई सदी में प्रवेश कर रहे हैं, उस व्यवस्था के साथ जिसमें करोड़ो मज़दूरों का, आदिवासियों का, गरीबों का विस्थापन है, दमन और भूख की विभीषिकाएं हैं और उन पर क़ानून की सहमतियों की विडंबनाएं हैं।”**

पुस्तक में पांचवा रिपोर्ताज ‘गन्नों के खेतों में चीनी कड़वी’ मस्सा, महाराष्ट्र पर आधारित रिपोर्ताज है। कुछ समय पहले ऑक्सफेम इंडिया की रिपोर्ट आयी थी कि करीब 2 लाख बाल मजदूर गन्ना काटने जैसे कार्यों में लगे हुए हैं। उनमें से 1.3 लाख बच्चे शिक्षा वंचित हैं यह वास्तव में चौंकाने वाली रिपोर्ट थी लेकिन जब शिरीष खरे का यह रिपोर्ताज पढ़ा तो इन मज़दूरों की गरीबी, पलायन, अभाव, पिछड़ापन, उधारी, शोषण, दलालों का दबाव, दयनीय स्थिति में काम करते रहने की मजबूरी के

साथ नारकीय जीवन जीने की विवशता हृदय को कचोट कर रख देती है। **"ब्राजील के बाद भारत सबसे बड़ा चीनी उत्पादक देश है। भारत में महाराष्ट्र चीनी उत्पादन में बहुत आगे रहा है। यह उत्पादन पांच लाख से अधिक आंतरिक प्रवासी मज़दूरों के बूते टिका है। ये मज़दूर कर्नाटक से लगे उस्मानाबाद, बीड़, सोलापुर, कोल्हापुर, सांगली और सतारा ज़िलों से हर साल नवंबर से मई के महीनों तक गन्ने के खेतों में गन्ने काट रहे होते हैं। लेकिन, इन मज़दूरों के सपनों में न खोया-खोया चांद होता है और न मुँह में मिठास घोलने वाली चीनी के दाने। होता है तो दोजून की रोटी का ख़्वाब, जिसके लिए अपने गांवों से पांच-छह सौ किलोमीटर दूर खेत-खेत भटकते रहते हैं"** गन्ने के खेतों में न रहने का कोई ठीक-ठिकाना होता है न ठीक से खाने-पीने की काई व्यवस्था। रिपोर्ताज में शिरीष खरे ऐसी ही अस्थायी बस्तियों का यथार्थ चित्रित करते हैं- **"बस्ती के नाम पर चौदह झुग्यिां खेत में पसर गई थीं। 'झुग्गी' और 'बस्ती' जैसे शब्द सुनने में भले ही अच्छे लगें, किंतु आंखों के सामने हर एक ढांचा शोषण की कहानी को विस्तार देता दिखता है। नीली पन्नियों, कपड़ों के कई रंग-बिरंगे चिथड़ों और लक़डियों के सहारे बँधी झुग्गी उड़ न जाए, इसलिए इनके ऊपर गन्ने के ढेर बांध कर लाद दिए गए थे। झुग्गी के भीतर की जगह को यदि कमरा कहें तो सबके लिए एक ही कमरा है। पूरी गृहस्थी लिए यह इसी कमरे में सोते हैं, जहां सबके लिए एक साथ पैर पसारने की भी गुंजाइश नहीं।"** इस तरह पूरा रिपोर्ताज चीनी मिलों के सच, गन्ना काटते मज़दूरों की अभाव भरी जिंदगी, महीनों घर से दूर, लगातार संघर्ष करते हुए एक दिन खेत में ही दम तोड़ देने वाले लोगों की दास्तान है। इसी के साथ सरकार के 'हर हाथ को काम और काम का पूरा दाम' योजना की कागज़ी औपचारिकताओं को भी उजागर करता है।

पुस्तक में छटा रिपोर्ताज 'सूरज को तोड़ने जाना है' महादेव बस्ती, महाराष्ट्र पर आधारित है जिसका आरंभ जूलिया वेबर की डायरी के साथ एक अच्छे शिक्षक की उम्मीद से होता है। फिर लेखक अत्यंत रोचक ढ़ंग से महादेव बस्ती के प्राइमरी स्कूल और 'आपराधिक जनजाति अधिनियम' की विडम्बनाओं की वास्तविकता तक पाठक को ले जाता है। **"भारत आजाद हुआ तो वर्ष 1952 में अंग्रेजों का बनाया वह काला कानून समाप्त हो गया। इसके बाद पारधी को 'अपराधी' की जगह 'विमुक्त' जनजाति का दर्जा मिला। किंतु अंग्रेजों के जाने के बाद भी धारणाएं नहीं मिटीं। लिहाज़ा, मराठवाड़ा के इन इलाकों में जब भी कोई अपराध होता है तो पुलिस सबसे पहले पारधी जनजाति के लोगों को तलाशने इनकी बस्तियों में छापा मारती है।..... नतीजा, पारधी बस्तियां गांव से कोसों दूर जंगलों में रहती हैं। जैसे कि यह बस्ती जहां हम हैं। कोई सड़क इस तरफ़ नहीं आती। न ही सरकार की काई योजना यहां तक पहुँचती है। न बिजली, न पानी, न राशन और न ही स्वास्थ्य की ही काई सुविधा है। यहां तक कि आस-पास कोई गांव भी नहीं है। ऐसे में इस बस्ती में स्कूल होना एक मिसाल है।"** स्कूल भी ऐसा जहां शत-प्रतिशत उपस्थिति, शत-प्रतिशत सफल परीक्षा परिणाम और महाराष्ट्र के आदर्श स्कूलों में से एक। किन्तु उम्मीद की इस सुन्दरता के पिछे की वास्तविकता कुछ और है- **"पहले यहां आए दिन पुलिस के छापे पडते रहते थे। इसलिए, लोग**

बाहरी आदमी पर भरोसा नहीं करते थे। चार साल पहले हालत यह थी कि यहां आना किसी खतरे से कम नहीं था। शिक्षक आया भी तो बच्चे नहीं मिलते थे। मिले भी तो इधर-उधर खेलते रहते। कभी थाली को एक उँगली से घुमाकर दिखाते तो कभी लाठी से पत्थर पर निशाना मारकर उसे गिरा देते। पक्षी पकड़ने के लिए जाल बिछाते और बटेर की तरह आवाज़ निकालते। बुलाने पर भी नहीं आते। ऊँचे वृक्ष पर खड़े होकर देखते रहते। उलटा 'का रे मास्टर' कहकर हमें चिढ़ाते।"

रिपोर्ताज को पढ़ते हुए जिस बदलाव की खुशी पाठक को होती है अगले ही कुछ पृष्ठों में बेचैन कर देने वाला तथ्य सामने आता है जिसमें इन बच्चों को पांचवी कक्षा की पढ़ाई के लिए पांच किलोमीटर दूर इटकुर गांव जाना पड़ता है। लेखक के शब्दों में- **"हकीकत यह है कि इस बस्ती से दूर जाने से बच्चे तो क्या बड़े भी डरते हैं। यह औपनिवेशिक अतीत का आंखों देखा हाल है। कुछ हैं जिन्हें जन्म के साथ ही सब कुछ मिल जाता है और कुछ हैं जिन्हें जन्म के साथ ही अपनी पहचान के लिए जूझते रहना पड़ता है।..... इसलिए यह बदलाव एक शुरूआती प्रयास है। वजह, यदि कुछ बच्चों ने चौथी के बाद पढ़ाई छोड़ दी तो सूरज की चमक फीकी पड़ जाएगी। पारधी जनजाति के सामने पहचान के संकट के बाद दूसरी बड़ी समस्या है बेकारी, जिसके कारण पारधी परिवारों पर अपने बच्चों से छोटी उम्र में भी काम कराने का दबाव रहता है।.....खुद समाज ही पारधी बच्चों की राह में सबसे बड़ा रोड़ा है। वे कहते हैं, ''पारधी बच्चे समाज के बाकी बच्चों के साथ घुल-मिल नहीं पाते। ऐसा इसलिए कि अक्सर दूसरे बच्चे उन्हें 'पारधी' कहकर चिढ़ाते हैं और उन्हें यह एहसास दिलाते हैं कि वे उनसे अलग हैं।.....कई बार शिक्षक पारधी बच्चों को दाखिला देने में आना-कानी करते हैं, बाकी बच्चों से दूर बैठने के लिए कहते हैं और कभी-कभार सबके सामने ही उन्हें नहा-धोकर आने की फटकार लगाते हुए जानबूझकर उनका मज़ाक उड़ाते हैं। चोरी होती है तो पहले पारधी बच्चों के बस्ते खंगाले जाते हैं। इससे इन बच्चों में हीन-भावना आती है।"** इस तरह आशा-निराशा एक-दूसरे में घुल मिल जाती है और उम्मीद आ़खिरी शब्द बनकर रह जाता है।

सातवां रिपोर्ताज 'मीराबेन को नींद नहीं आती!' संगम टेकरी, गुजरात से है। जिसका शीर्षक ही कष्टप्रद घटना की ओर संकेत करता है और फिर पता चलता है- **"बार-बार लगातार अपनी झोपड़ियों सहित उजड़ना और नुकसान झेलते रहना मीराबेन की जिन्दगी है। पर, वे यहां अकेली नहीं हैं। उनके साथ बस्ती की डेढ़ सौ से ज़्यादा घर-गृहस्थियां सड़क पर आ चुकी हैं।....पता नहीं कब कोई बुल्डोज़र आए और एक-एक करके बड़ी मुश्किल से जोड़ी गईं तमाम चीज़ों को पलक झपकते रौंध डाले"** भारत में ये सब कई दशकों से होता आ रहा है और ये सब होता है शहरी सौंदर्यकरण के नाम पर जिसका अर्थ शहरों को सुंदर और अनुकूल बनाना है। जिसमें शहरी सौंदर्यकरण के नाम पर कई बार लोगों को अपने घरों या जगहों से निकाल दिया जाता है। **"सूरत की 'सूरत' चमकाने और सड़कों को चौड़ा करने के नाम पर हज़ारों हज़ार गीली आंखें अपने घर-संसार को उजड़ते हुए देख रही थीं। यहीं वजह थी कि शहर के एक तबके के लिए ज़ीरो स्लम अभियान आपदा**

बनकर आया था'' इससे उन आम लोगों को जिन्होंने बमुश्किल थोड़ी सी जगह अपने हिस्से में कर ली थी उन्हें फिर जगहों की सुरक्षा, बगड़ती आर्थिक और सामाजिक स्थिति का सामना करना पड़ता है। अब तो शहर के विकास के नाम पर झोपड़ियां टूटने की ख़बरे आए दिन आती रहती हैं। एक प्रश्न है जो बार-बार उठता है क्या शहरी सौंदर्यकरण के नाम पर लोगों को निकाल देना, क्या उनके अधिकारों का उल्लंघन करना नहीं है जो कड़ी मेहनत कर घर-जमीन जोड़ते हैं। सुरेश कुमार ने कहीं अपनी कविता में कहा है-

कई गंदी बस्तियां हैं शहर में मेरे,
लेकिन उन्हीं बस्तियों के कारण
साफ है शहर मेरा।

शिरीष खरे भी एक लम्बे अनुभव के बाद इस तथ्य इस तरह पेश करते हैं- **''एक जमाने में विकास के लिए 'गरीबी हटाना' घोषित नारा हुआ करता था। लेकिन, संगम टोकरी इस बात की गवाही देती है कि दशकों तक जब गरीबी नहीं हटी तो विकास पथ से 'गरीबों को हटाना' कैसे एक अघोषित एजेंडा बन गया है। यही वजह है कि गुजरात और विशेष तौर से सूरत जैसे शहर को विकास का मॉडल बताने पर विकास एक विवादास्पद शब्द लगने लगा है।''** आधुनिक शहरों को बसाने की क़ीमत अक्सर ग़रीबों को ही चुकानी पड़ती है। पुनर्वास की योजनाएं कितनों को लाभ दे पायी इस पर बहुत शोध-विचार नहीं किया जाता। शहर के अमीरों को काम करने के लिए सस्ते मज़दूर तो चाहिए, लेकिन उनके रहवास शहर से बाहर चाहिए। शहरों में लोगों के बीच असमानता की गहराती यह खाई कितने गरीबों को लील जाएगी इसका अनुमान लगाना भी संभव नहीं। वास्तव में इस तरह का विकास सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक स्थिति और जीवन की गुणवत्ता पर अत्यंत नकारात्मक प्रभाव डालता है। **''आमतौर पर झोपड़पट्टी वालों पर 'जबरन कब्ज़ा' करने का आरोप लगता है। पर, यह नहीं सोचा जाता कि यही तबका तो हाड़तोड़ मेहनत करके शहर की अर्थव्यवस्था को चला रहा है।''** अत: शहरी सौंदर्यकरण के नाम पर विस्थापन करना तब तक उचित नहीं है जब तक यह समाज के सभी वर्गों के हित में ना हो। शहरी सौंदर्यकरण की योजना समाज के सभी वर्गों को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए ताकि इसमें सभी लोगों का समावेश हो सके और समृद्धि का मार्ग खोजा जा सके।

आठवां रिपोर्ताज 'वे तुम्हारी नदी को मैदान बना जाएंगे!' में शिरीष खरे नर्मदा नदी के अस्तित्व के संकट को विस्तारपूर्वक पाठकों के सामने लाने का प्रयास करते हैं नर्मदा हमेशा से मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात की जीवनदायनी नदी रही है। किन्तु आज शिरीष खरे बताते हैं- **''नर्मदा बहेगी तभी तो रहेगी! लेकिन पांच बड़े बांधों से इसका जल बहना बंद हो गया है। फिर भी यह जिंदा है, लेकिन मैंने सरकारी घोषणाओं से जाना कि सरकार जबलपुर से नरसिंहपुर के बीच किनारे-किनारे झुंड-के-झुंड कोयले वाले बिजलीघर बनाने जा रही है। लगा कि इसकी मौत तय है। बिजलीघर नदी को तो चूसेंगे ही, बदले में छोड़ी जाने वाली राख से उसे खाक भी कर देंगे। फिर जबलपुर के भूकंप केंद्र कोसमघाट से चालीस किलोमीटर दूर चुटका में बनने वाले परमाणु**

बिजलीघर ने मुझे कँपा दिया। यह भले ही कभी जापान जैसा हादसा न दोहराए तो भी अपने विकिरणरयुक्त जल से नर्मदा में ज़हर तो भर ही सकता है।" नदी का संकट कभी भी केवल नदी का संकट नहीं होता यह जल, जंगल, वन्य प्राणियों तथा मानव सभ्यता का संकट है जिसका प्रभाव अत्यंत व्यापक है। यदि शिरीष खरे के शब्दों में ही कहे तो **''आश्चर्य की बात यह है कि यहां सरकारी स्तर पर एक भी संस्थान ऐसा नहीं जो पानी, पत्थर, रेत, वनस्पति और मछली से लेकर उसमें उपयोग लायक किसी भी चीज़ को बचाने के लिए सीधे तौर पर जवाबदेह हो। गुजरात के साथ जल बँटवारे को लेकर 'नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण' है। बांध या बिजलीघर बनाने के लिए 'नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण' है। लेकिन, नर्मदा के प्रवाह को प्रभावित करने वाले कारकों पर जानने-समझने के लिए कोई संस्थान नहीं है।"**

रिपोर्ताज लेखक ने नर्मदा का बहुत ही मार्मिक चित्रण करते हुए बताया है कि इस नदी में पहले तो विशालकाय बाधों का निर्माण हुआ जिससे जलधारा अवरूद्ध हुई और फिर कोयले, परमाणु बिजलीघरों का निर्माण किया गया जिन्होंने बड़ी मात्रा में नदी का पानी सोखा अंतत: हजारों टन का मलवा भी इसी नदी में गया। **''नर्मदा कभी कई विस्थापनों की एक साझा कहानी लगती है। कभी अलग-अलग विसंगतियों का एक उपन्यास। कभी विरोधाभासों का धारावाहिक। कहीं लूट की फ़सल। और इसके नीचे एक और धारा बहते देख रहा हूँ, जो न मालूम और कितने हज़ार लोगों को अपनी गर्त में लेती जा रही है। यह धारा नर्मदा और उसकी सहायक नदियां बीते तीस-चालीस सालों से एक नया इतिहास बनने की राह पर हैं। ये इस सदी के तमाम देशों की नदियों के मद्देनज़र विकास के विरोधाभास और विकास की विसंगतियों पर बहस की एक नई इबारत लिख रही हैं।"**

नवां रिपोर्ताज 'सुबह होने में देर है' बायतु राजस्थान से है जिसमें राजौ, मीरा और सुआलाल भाम्बी की पत्नी गीतादेवी तथा बेटी रेणु के जीवन, समाज, परिवेश के दबाव और विसंगतियों की वास्तविक कहानी है। लेखक ने आरंभ में ही पाठक को इस तथ्य से अवगत करा दिया है- **''इधर है अपनी अस्मत गंवा चुकी राजौ, जो गांव के लाख विरोध के बावजूद न्याय के लिए अदालत में जा खड़ी हुई, लेकिन घर लौटी तो गांव छूट गया। उधर है, आदिवासी होने का दर्द झेलने वाली मीरा, जिसने गांववालों से डरकर अदालत से मुँह फेर लिया और पहले की तरह गांव में रहने में अपनी भलाई समझी"** राजौ सावऊ गांव की रहने वाली उन्निस वर्षीय बालिका है जो पंद्रह वर्ष की आयु में ही टीकूराम की हवस का शिकार बन गई तमाम कोट कचहरी थाने के बावजूद टीकूराम ज़मानत पर रिहा है उसकी शादी हो चुकी है। जबकि राजौ अभी भी प्रतिकार और संघर्ष कर रही है। लेखक जब उसकी रिर्पोट लिखते समय उसकी वास्तविक पहचान छुपाने का वादा करता है तो बेझिझक वह कहती है- **''मेरा असल नाम और फ़ोटो ही देना भाई! नहीं तो कुछ मत छापना। उसके ये शब्द पीढ़ियों की पीड़ा से उपजे प्रतिरोध का स्वाभाविक मनोभाव ही तो हैं, जो परंपरागत प्रवृत्ति के विरूद्ध परिवर्तन के वाहक भी हो सकते हैं, लेकिन अशिक्षा, आर्थिक तंगी ओर सभी**

तरह की कानूनी अड़चनों से जूझने के बावजूद समाज की सोच और समाज पर निर्भरता ही उसके न्याय के रास्ते की सबसे बड़ी बाधा बन गए हैं।

मीरा बांडी धारा की रहवासी भील समूदाय के पूसाराम की पत्नी है जिसे रामसिंह राजपूत ने नशे में धुत होकर बेवजह खूब मारा-पीटा। मीरा ने इसकी शिकायत थाने में की किन्तु ये दंपति को दो माह में ही समाज से हार गए और राज़ीना में के मनवा लिए गए। **''कहते हैं, 'पाँच पंच मिल कीजै काज, हारे-जीते होय न लाज'। किंतु, जहाँ के पंच अपनी ताकत से जीत को अपने खाते में रखते हों, वहाँ के कमज़ोरों के पास हार और लाज ही बची रह जाती है। ऐसे में कोई कमज़ोर जीतने की उम्मीद से थाने और कचहरी के रास्ते जाए भी तो उसे जाती हुई राजौ और पूसाराम के साथ लौटती हुई मीरा मिलती है। तब राजौ से मीरा और गीता की दूरी और दर्द को महसूस करने के बाद यह सवाल इतना सीधा नहीं रह जाता है कि वह किसके साथ चले और किसके साथ लौटे ?''** संपूर्ण रिपोर्ताज पढ़ने के पश्चात पाठक यह सोचने को मज़बूर हो जाता है कि अंतत: एक महिला भारत की न्याय व्यवस्था से कोई उम्मीद न रखते हुए समाज के समक्ष विवश हो जाती है। **''गीता और रेणु के शरीर पर चोट के निशान ताज़ा हैं। दोनों इस बार किसी तरह कोई समझौता न करने के बारे में बात कर रही हैं। उन्होंने गांव से थाने, थाने से अदालत तक का रास्ता तो तय कर लिया है लेकिन, आगे क्या वे अदालत के रास्ते पर चलकर गांव के रास्तों पर वापस चल सकेंगी रात हो चुकी है, अब यह सुबह ही तय होगा कि ये दोनों किस रास्ते पर चलेंगी, सुबह होने में अभी देर है.....''**

दसवां रिपोर्ताज 'दंडकारण्य यूं ही लाल नहीं है' दरभा, छत्तीसगढ़ के बस्तर इलाके से संबंधित है। जहां न रोशनी है, न स्कूल है, न ही स्वास्थ्य सुविधाएं। आए दिन रक्तपात से सने इस इलाके में जीवन के बहुत कम और मृत्यु के अनेक कारण मौजूद हैं। शिरीष खरे निष्कर्षात्म रूप में कहते हैं- **''कुल मिलाकर अनियमितता, उपेक्षा और विसंगतियों के त्रिकोण में दंडकारण्य के भीतर का घुप्प अँधेरा छंटने का नाम नहीं लेता है, जबकि छत्तीसगढ़ के संसाधनों का अँधाधुँध उपयोग करके बस्तर के बाहर रोशनी की लंबी-लंबी रेखाएं खींची जा रही हैं।''** वास्तविकता यह है- **''बस्तर के विकास के नाम पर बस्तर के लोगों का ही विकास रूक गया है।''** इसके साथ ही लेखक इस पूरे इलाके के नक्सलवाद पर विश्लेषणात्म रिपोट पेश करता है। वर्तमान दौर में भारत का कोई इलाका सबसे अधिक लहूलुहान है तो वह है दंडकारण्य। छत्तीसगढ़ के बस्तर में घूमते हुए लेखक नक्सलियों और सुरक्षाबलों के बीच पिस रहे जनमानस के प्रश्नों से जूझते हुए कहते हैं- **''बस्तर में नक्सल वर्ष 1980 के दौर में पनपा और वर्ष 2005 से ससंचाई वे अत्यधिक ज़ोर पकड़ लिया। पहले 'सलमा जुडूम' फिर 'ग्रीन हंट' और अब हिंसा का तीसरा वीभत्स दौर चल रहा है। राज्य को लगता है कि हिंसा और 'माइंड वार' से वह नक्सलियों पर लगाम लगा लेगा। 'सलमा जुडूम' को लेकर लंबे समय तक सर्वोच्च न्यायालय में प्रकरण चला। इस दौरान पाँच सौ से अधिक लोग मारे गए। नब्बे से अधिक महिलाओं ने अपने साथ हुए अनाचार की शिकायतें कीं। लाखों लोग गाँव छोड़ने पर मजबूर हुए। प्रश्न है कि सरकार बड़े पैमाने पर सशस्त्र बलों के बूते यदि नक्सलियों को समाप्त करना चाहती है**

तो ये सिमटते क्यों नहीं ? दरअसल, सरकार नक्सली हिंसा को सिर्फ़ कानून-व्यवस्था की समस्या मान रही है, जबकि इसकी जड़ में सामाजिक और आर्थिक कारण छिपे हैं। ''यह रिपोर्ताज गहरे अनुभवों के साथ पूरी सजगता के साथ लिखा गया है। यह आदिवासी जीवन का दस्तावेज़ न होकर नक्सल हिंसा से अलग जो आम आदमी जीवन के बुनियादी सत्यों को उजागर करतरा है। **''जनजाति की कीमत पर विकास का लाभ शहरों को मिला है। एक लोकतात्रिक देश की अवधारणा में समान अवसर, समान अधिकार तथा समान सम्मान का उल्लेख है। इस दृष्टि से छत्तीसगढ़ अपनी राजधानी रायपुर और देश की राजधानी दिल्ली से दिन-ब-दिन दूर होता जा रहा है।''**

ग्यारहवां रिपोर्ताज 'खंडहरों में गाइड की तलाश' में 'मदकूद्वीप' की कहानी है। शिरीष खरे अपने पांच सहयोगियों के साथ छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर से बिलासपुर हाइवे पर कोई अस्सी किलोमीटर बेतलपुर और वहां से चार किलोमीटर संकरा रास्ता फिर शिवनाथ नदी को डोंगी से पार कर 'मदकूद्वीप पहुचते हैं। जहां पहुँच कर वे देखते हैं कि कैसे एक सभ्यता इतिहास में बदल जाती है और इतिहास पर आस्था का अधिपत्य हो जाता है। **''विरासत के मामले में सम्पन्न होने के बावजूद यह पूरा क्षेत्र उपेक्षा का मारा है। ऐसे ही, पारंपरिक जल-स्त्रोत के केंद्र तालाबों को भी पाटा जा रहा है। इसी तरह, अनेक गुफाओं और पहाड़ियों पर उकेरे गए शिकार आदि के दृश्य यह संकेत करते थे कि उस धरती पर कभी आदि-मानव का बसेरा था।''**

मदकूद्वीप की संस्कृति भारत की आत्मा है किन्तु आज की नगरीय संस्कृति के बीच यह अपना अस्तित्व खोती जा रही है। कथित आधुनिक और विकसित मन इन पुरातन स्मृतियों के प्रति उदासीन दिखाई देता है। पुराखों की ऐसी प्राचीन सभ्यता पर शोध करने के लिए किसी गाइड मौजूद न होना एक बड़ा प्रश्न है- **''मेरी स्मृतियों की यात्रा के एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव के बीच ऐसी ही एक छोटी-सी यात्रा है। इसमें लोग मौन हैं, किंतु पत्थर बोलते हैं। जहां वर्तमान के खंडहरों में अतीत की पीड़ा है, जहां मैं खुद को हज़ारों वर्ष पुरानी उस जगह पर बैठा पाता हूँ, जहां कभी मानव-बस्ती थी, एक ऐसा द्वीप जिसमें पुरखों की आत्मा बसती थी।''** रिपोर्ताज इतिहास और वर्तमान पीढ़ी की एितहासिक धरोहरों के प्रति उदासीनता को अभिव्यक्त करता हुआ एक निष्कर्ष पाठकों के समक्ष छोड़ जाता है- **''विशालकाय बाज़ार को छोटा बाज़ार और विशालकाय सभ्यता को छोटी सभ्यता को रौंद डालने का कोई अधिकार नहीं है।''**

बारहवां और अंतिम रिपोर्ताज 'धान के कटोरे में राहत हो धोखा' अछोटी, छत्तीसगढ़ के खेतिहर मजदूरों पर आधारित बेहद मार्मिक, विचारोत्तेजक रिपोर्ताज है। छत्तीसगढ़ का एक बड़ा इलाका बूरी तरह सूखे में झुलस जाता है, सरकार सूखे के बाद अकाल से बचने के लिए राहत की घोषणा करती है जो कई कारणों से धोखा साबित होती है। **''सूखे के बाद राहत के सूखे को देखकर लगा कि खेतों की ज़मीन ही नहीं दरक गई थी, हर ओर सत्ता की संवेदना भी दरक गई थी।''** छत्तीसगढ़ के सूखा प्रभावित ये किसान हाशिए पर हैं जगदीश सोनी का नाम सूखा प्रभावित किसानों की सूची में नहीं आता उनका कहना है पटवारी न

खेत गया, न उनसे मिला, उसने गलत लोगों को मुआवजा बांटा, मरना तो है ही, सामने आया तो गोली मार दूगा। इन इलाकों में सूखे और अकाल के कई कारण मौजूद हैं- नहर से समय पर पानी न मिलना, सर्वे में हुई गड़बड़ियां, आवंटित बजट का बहुत कम होना, मुआवजा वितरण की नियमावली का दोषपूर्ण होना आदि। वास्तविक तथ्य यह है कि प्रदेश के दस लाख के अधिक किसानों के धान न बेचने के बावजूद यदि सरकार कुछ ही किसानों को सूखा प्रभावित घाषित करती है तो यह अपने आप में एक विरोधाभास है। यात्रा के दौरान कोरबी गांव की बिसाहिन बाई यादव कहती है- **"एक एकड़ से भी कम ज़मीन है मेरे बेटे के नाम। मुआवजा दिया नहीं। बेटे विनोद को तीन महीने से मनरेगा का पैसा भी नहीं दिया।" बड़ी देर से उनकी आँखें सूखी लग रही थीं, लेकिन बताते-बताते वे भावुक हो गईं। नम आँखों से पूछा, "घर कैसे चलेगा?" इस विकट परिस्थिति में प्रदेश के किसानों के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यही था, "घर कैसे चलेगा?"** गत कुछ समय से छत्तीसगढ़ के खेतीहर मजदूरों की संख्या घटने लगी है और पलायन बढ़ने लगा है।

'एक देश बारह दुनिया' पुस्तक अपनी प्रवाहशाली भाषा, नूतन दृश्य बिम्बों, तीखे व्यंग्यों से पाठक के अंतरमन में बेचैनी पैदा कर बहुत कुछ सोचने को मजबूर कर देती है। इसमें विकासात्मक विरोधाभास, बेबसी, दु:ख, अवसाद, निराशा के साथ संघर्ष और मजबूरियों की कई कहानियां मौजूद हैं। जिन्हें पढ़ते हुए पाठक बीच-बीच में कुछ समय के लिए रूकता है, फिर उस बारे में सोचने के लिए मजबूर हो जाता है, क्योंकि इनसे पार पाना अत्यंत जटित है। इन कठिनाईयों, जटिताओं के बीच मुझे शिरीष कुमार मौर्य की कविताएं याद आती है-

हम पक्के बरामदों में आग तापते हुए
अपनी चमड़ी से लील जाते हैं
जिन कच्चे घरों को वाकई आग की
ज़रूरत है
वे सर्द और नम हवाओं में सील जाते हैं
हमारे घरों में
मटर पनीर की सब्ज़ी बच जाती है
असंख्य रसोईघरों में
बासी रोटियां भी खप जाती हैं
मजबूरियां जिन्हें कहते हैं
वे सरल होती हैं
उनसे पार पाना जटिल होता

बावजूद ये सब समझकर भी हम गलत होते हुए देख रहे हैं, कई बार कुछ न कर पाने की मजबूरी और बेचैनी एक साथ घुलमिल जाती है। जो कुछ कर सकते हैं, वे कुछ समझना नहीं चाहते। निरंतर विकास के दावों के साथ उभरते इस देश में कई सीलन भरी अंधेरी दुनियाएं हाशिये पर संघर्षरत हैं। वर्तमान मुख्यधारा की मीडिया भी विकास और तकनीक ओर बढ़ते भारत को ही एकमात्र दुनिया दिखा रहा है। ऐसे दौर में कई बार ऐसा महसूस होता है हासिये के लोगों के दु:ख, तकलीफ़ से किसी का सरोकार नहीं। यहां अंधेरे की कई अभेद्य परते हैं और उजाले का बस एक चेहरा-

ख़रगोश पृथ्वी के अंधेरे में
घास कुतरते थे

आकाश के उजाले में
फलों की ओर उड़ते थे तोते
तब संसार इतना खूबसूरत था
अब
कई-कई अभेद्य परतों में है
अंधेरा
उजाले का है
बस एक चेहरा

पुस्तक:- एक देश बारह दुनिया
लेखक:- शिरीष खरे
प्रकाशन:- राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली।
पहला संस्करण :- 2021
मूल्य :- 295

***

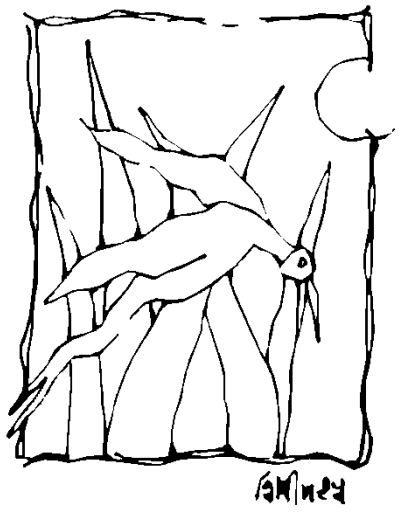

समय की विकृतियों का दस्तावेज़

श्री कृष्ण नीरज

बहुत ही कम समय में अपनी पहचान बनाने वाले कवि जावेद आलम खान अक्सर अपनी कविताओं में समय से सवाल करते हैं। यह विविध विद्रूपताओं का दौर है इसमें इंसान महज मशीन बनकर रह गया है, जावेद इन्हीं विद्रूपताओं की पड़ताल करते हैं। वे बिंबो एवं प्रतीकों के साथ नया मुहावरा गढ़ते हैं। जहां एक तरफ उनकी कविताएं प्रतिरोध करती हैं वहीं दूसरी तरफ शांति की आशा लिए होती हैं।

जावेद आलम खान का कविता संग्रह 'स्याह वक्त की इबारतें' देश की इबारतों का आईना है। यह भूमंडलीय दौर है, इसमें इंसान (ग्लोबल विलेज में) अपना अस्तित्व खो चुका है, उनकी कविताएं इसी अस्तित्व को तलाशती हैं। यह वह दौर है जिसमें इंसान समस्याओं से लड़ने के बजाय झूठी आत्मसंतुष्टि का रास्ता खोज रहा है, रिश्तो का पतन हो चुका है, स्वार्थ के लिए गलत के साथ होना इंसान की प्रवृत्ति बन चुकी है। ऐसे में कवि 'मैं' शैली में आत्मालोचना करता है-

"हम अपनी ही आत्म संतुष्टि के हत्यारे हैं
अपनी प्रतिभा को आत्ममुग्धता के ताबूत में दफन कर चुके हैं।"

जावेद की कविताओं में राजनीतिक क्रूरता का दंश दिखाई देता है। नौकरशाही, भ्रष्टाचार को दिखाती उनकी कविताएं ऐसे सवालों से टकराती हैं

जहां राजनीति में शतरंज का खेल खेला जाता है। यह न्यायिक हत्या का दौर है, इस दौर में बुलडोजर का न्याय लोगों में सर्वमान्य सा है। जावेद की कविताएं इसी के इर्द-गिर्द घूमती हैं। जावेद ने कविताओं में प्रकृति को याद किया है। वे दिखाते हैं कि मशीनी युग में मशीन बन चुका मनुष्य प्रकृति से कितना दूर होता चला जा रहा है। बच्चे प्रकृति से जुड़ने के बजाय मोबाइल और टी०वी० में अपना मनोरंजन ढूंढ रहे हैं। इंसानों की हंसी के आवरण में छिपी उदासी अपना आवरण फैला रही है। आज इंसान मेट्रो ट्रेन सा भागता सब कुछ भूल चुका है।

"अजीब है कि आदमी अपने खटरागों में व्यस्त है
प्रकृति से अभिशप्त है"

1992 के बाद भूमंडलीकरण इतनी तेजी से अपनी डैने फैलाया की उसके रंग में पूरी दुनिया रंग गई। प्रभा खेतान लिखती हैं – "भूमंडलीकरण वह बिजली है जिससे आपका घर रोशन भी हो सकता है और आपके घर में आग भी लग सकती है।" जावेद ने अपनी कविताओं में इसकी रोशनी और आग दोनों को दिखाया है। जहां इसकी रोशनी से देश में चकाचौंध मची है वहीं दूसरी तरफ इसकी आग देश को जला भी रही है। इसकी आग नौकरियों में लगी है, बाजारों में लगी है, रिश्तो में लगी है; तो वहीं दूसरी तरफ आज का हर व्यक्ति निराशा, हताशा, कुंठा से जूझ रहा है। जावेद दिखाते हैं कि किस तरह लोगों का नैतिक पतन हो रहा है। रिश्ते अपना मूल्य खो रहे हैं। आज का हर व्यक्ति शहर के चकाचौंध में भाग रहा है-

"देश अब भी मौजूद है
जब सभ्यता उखाड़ रही है काल्पनिक मुर्दे
जब संस्कृति के जंगल कैद हैं
शहरों की चहारदीवारी में"

कवि वर्तमान पत्रकारिता पर चोट करता है और दिखाता है कि किस तरह देश के लोकतन्त्र का चौथा स्तंभ अपने मार्ग से भटक गया है। पदलोलुपता, झूठीप्रतिष्ठा एवं स्वार्थ के लिए किस प्रकार जनता की आवाज को दबा दिया जा रहा है-

"न्यूज़ चैनलों पर चीखते एंकरों की उलटबासियों में
गुम हुई जनता की आवाज"

कवि देश के अंदर सांप्रदायिकता की खौफ को दिखाया है। वह दिखाता है कि किस तरह राजनीतिक स्वार्थ के लिए वैमनस्यता को आधार दिया जा रहा है। कवि अल्पसंख्यकों के भय और सिसकियों को कलमबद्ध करता है

"मेरे अंदर एक धार्मिक अल्पसंख्यक का खौफ है
जो दंगों की अफवाह उड़ते ही
घर के दरवाजे पर मोटे ताले जड़ देता है।"

जावेद ने धर्म-जातीय गर्व में अंधी हुई जनता के पागलपन को चित्रित किया है। वे दिखाते हैं कि राष्ट्रवाद के नाम पर सांप्रदायिकता कैसे पनाह ले रही है और नफरत को जन्म दे रही है। यह ऐसा समय है जहां 'देशभक्ति' की मार्केटिंग की जा रही है और कुछ वोट की खातिर 'देश के गद्दारों को गोली मारो सालों को' जैसे नारे लगवाए जा रहे हैं। जावेद लोगों के बीच फैलते जहर को दिखाते हैं-

"मिथ्या गर्व के स्वप्नलोक में चक्कर काटती देशभक्ति
बंदूक बनकर अपनी ही कनपटी पर तनी है।"

वहीं दूसरी तरफ व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी और आईटी सेल द्वारा युवाओं में लगवाई गई इस आग को दिखाते हैं जहां मोबाइल चलाते-चलाते सोया हुआ किशोर बड़बड़ाता हुआ देश के गद्दारों को गोली मारने का फरमान सुनाता है। जावेद अपनी कविताओं में राष्ट्रवाद के मर्म को उद्घाटित करते हैं और वर्तमान राष्ट्रवाद पर प्रश्न खड़ा करते हैं

"दरअसल राष्ट्रवाद देश की किताब में वह पवित्र शब्द है
जिसका मौन वाचन देश की जनता करती है
और सस्वर पाठ हिंसक गतिविधियों में लिप्त ठेकेदार"

हर युग में ऐसे बहुत से कवि रहे हैं जिसने गलत के खिलाफ आवाज उठाई है। पूरी दुनिया में हमेशा सच बोलने वालों का विरोध किया जाता रहा है, यह परंपरा दिनों दिन और ही सशक्त होती जा रही है। जावेद वर्तमान दौर के कैदीनुमा इंसानों का आइना प्रस्तुत करते हैं, उनमें प्रतिरोध की शक्ति मर गई है, आत्मलोलुपता में सुनने और समझने की शक्ति क्षीण हो गई है। सच बोलने वाले को देशद्रोही कहकर जेल भेज दिया जा रहा है। इस निर्मम समय में कविता ही है जो इंकलाब की राह दिखाती है-

"सनद रहे कि तारीख की तहरीर में दर्ज होगा
चारण भाषा जिसे देशद्रोह लिखती है
कविता उसे इंकलाब कहती है"

कवि क्रूरताओं के अट्टाहास को दिखाता है। वह याद दिलाता है कि कितना जरूरी है एक पुरुष के भीतर एक स्त्री का होना, इस निर्मम समय में घावों पर मरहम लगाने वालों के महत्व को बड़ी खूबसूरती से रचा है। यह चौकन्ना रहने का वक्त है। किसके हाथ की छूरी कब किसके गले पड़ जाए पता नहीं। कवि 'अंधेरे' कविता में ज़िदगी के स्याह में उतरने और उससे संघर्ष करने को प्रेरित करता है-

"कभी उतरना फुरसत से उस अंधेरे में
कोई छूटी हुई चमक जरूर मिलेगी
और तुम देखोगे की तुम्हारा डर
अतीत की नदी में बह गया है।"

जावेद शोषण, षडयंत्र और भ्रष्टाचार की तह में जाकर सच की पड़ताल करते हैं। वे अपनी चुभती भाषा में व्यंग्य करते हैं। वे देश की संरचना पर अपनी दृष्टि डालते हैं और महज जमीन के टुकड़ों को देश नहीं मानते, वे किसी तस्वीर को देश नहीं मानते। उन्हें प्रकृति, बच्चों, हल, कुदालों और किसानों में देश दिखता है।

"देश बनता है आदमियों से
और सांस लेता है आदमियत में।"

जावेद की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से बहुत सुलझी हुई दृष्टि है। वे संस्कृति और नैतिकता को जितना जरूरी मानते हैं उतना ही समता और प्रगति विरोधी जड़ संस्कृतियों पर प्रहार भी करते हैं। कवि मध्यवर्ग पर चोट करता है और चोट करता है उन व्यक्तियों पर जो जुल्म करते करते आगे बढ़ गए, चाटुकारिता की ताकत ने उन्हें सर्वोच्च पद पर खड़ा कर दिया। कवि अंधेरे में चल रहे इन कुख्यातों को नंगा देखता है।

भक्त, फैन के साथ-साथ आत्ममुग्धता की भी बाढ़ आई है; कवि इन आत्ममुग्ध लोगों की तुलना कछुए की पीठ से करता है जिनको असंख्य चीत्कार

की ध्वनियां सुनाई नहीं देती। आज लोगों की पशुता देवत्व के जिहरबख्तर में कस सी गई है।

किसानों को देश मानने वाला कवि किसान आंदोलन की झांकी प्रस्तुत करता है। उनके माटी के प्यार को बिंबो, प्रतीकों से सजाता है। तानाशाही सरकार के खिलाफ किसानों की चेतना को दिखाता है-

"कोई आंदोलन नहीं कर रहे हैं
धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि होने का दंभ पाले
दो मुंहे सांपों के दांत उखाड़ रहे हैं
झूठ की तहरीर फाड़ रहे हैं।"

कवि वेश्याओं की विवशता और समस्याओं पर कलम चलाता है। वह 'जिंदा जिस्म का मर्सिया' कविता में उनकी विडंबना को दिखाता है। पूरी दुनिया में जिस्म का सौदा करने को मजबूर इन वेश्याओं को इंसान समझा ही नहीं गया। कवि दिखाता है कि उनके आत्मा के घाव कभी नहीं भरे-

"वे समाज में रहकर समाज के फ्रेम से बाहर थीं
वह पुरुषों के लिए अंधेरे में प्रिया थी दिन में कुलटा थी।"

कोरोना की त्रासदी जिसने हजारों जिंदगियां नष्ट कर दी जिससे उत्पन्न बेरोजगारी, भुखमरी पर न तो सरकार का ध्यान गया और न ही किसी अखबार वालों ने कलम चलाई। इसी समय के यथार्थ को जावेद ने 'लॉकडाउन में कारखाना' कविता में दिखाया है। 'पनाह' आज के दौर में अनसुना सा शब्द लगने लगा है क्योंकि भूमंडलीय संस्कृति आपसी सहयोग एवं भाईचारे का लगभग खात्मा कर चुकी है, कवि इसी पनाह के विविध शेड्स को दिखाता है-

कवि ने स्त्रियों की विडंबनाओं को चित्रित किया है। सामंती दौर से निकली स्त्रियां आज बाजार की चंगुल में है। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष होने वाले शोषण को प्रतिबिंबित करते हुए उनकी असुरक्षा बोध एवं भय को शब्दबद्ध किया है। सूचना क्रांति और तकनीकी ने हमारा बचपन छीन लिया और जवानी पटरी पर रेलगाड़ी की तरह भाग रही है। कवि बचपन से मर्द तक की यात्रा को रचा है और दिखाया है कि बच्चा बड़ा होता है तो उसके बहुत सारे अधिकार स्वतः खत्म होते चले जाते हैं, यहां तक की उसका रोना भी सर्वग्राह्य नहीं। जावेद 'मर्दानगी' कविता में लिखते हैं-

"भीतर उगे तमाम फूलों की बेदखली है मर्दानगी
हजार कोमलताओं के कत्ल पर मिलता है मर्द का तमगा
कि बच्चे का मर्द बनना इंसानी इतिहास की सबसे क्रूर घटना है।"

जावेद की कविताओं में एक पिता की जिम्मेदारी, कर्तव्य और चुनौतियों का भी प्रतिबिंब दिखाई देता है। संभावनाओं की किरण प्रेम से निकलती है और प्रेम इस क्रूरतम समय में उम्मीद की सुबह है। जावेद अपनी कविताओं में ऐसे ही प्रेम का राग रचते हैं और हवा में घुले जहर को अपने खुश्बू से नष्ट कर जीवन का संचार करते हैं-

"वह प्रेम ही है जो सूर्य की किरणों को सोखकर
विकट अंधकार के युग में
भटकती मानवता को नई रोशनी दिखाएगा।"

लेकिन आज के दौर में प्रेम के बजाय देह को महत्व दिया जा रहा है –

“तुम महसूस कर सकते थे संबंधों की गर्माहट
पा सकते थे प्रेम की शीतलता
मगर तुमने आत्मा में समा जाने की बजाय
देह में धंस जाने को चुना”

जावेद की कविताओं के शिल्प की बात करें तो उनकी कविताओं का एक विराट शिल्प है। इन्होंने अपनी मुहावरेदार भाषा विकसित की है। उनकी कविताओं में सूक्ष्मता मिलती है, जो खोलने पर परत दर परत खुलती चली जाती है। वे नवीन बिंबो एवं प्रतीकों का प्रयोग करते हैं –

“नौकरी की तलाश करती किताबों में डूबी
मेरी जवानी यूट्यूब पर चलती फिल्म में
उस विज्ञापन की तरह आई
जिसे स्किप करके लोग आगे बढ़ जाते हैं।”

वे अपनी कविताओं में कथा कहते हैं, कभी सपाटबयानी तो कभी फेंटेसी में अपनी बात कहते हैं। उनकी अधिकतर कविताएं 'मैं' शैली में हैं जो पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी कविताओं में कहीं-कहीं दोहराव भी देखने को मिलता है। अतः जावेद की कवितायेँ समय की क्रूरताओं के बीच मानवता और प्रेम की राह दिखाती हैं।

पुस्तक:- स्याह वक़्त की इबारतें
लेखक:- जावेद आलम खान
प्रकाशन:- बोधि प्रकाशन, जयपुर
पहला संस्करण :- 2023
***

हिन्दी ग़ज़ल में अंग्रेजी के तत्व

डॉ. ज़ियाउर रहमान जाफ़री

हिंदी भारत ही नहीं विश्व की एक महत्वपूर्ण संवाद की भाषा है.एक भाषा के साथ यह हमारी अस्मिता और सांस्कृतिक मूल्यों की निशानी भी है.इसके पास एक समृद्ध व्याकरण,भाषा और काव्यशास्त्र तथा अन्य भाषाओं के शब्दों को पचाने की अद्भुत क्षमता है.हिंदी में जो बोली जाती है,वही लिखी जाती है.इसमें साइलेंट शब्द नहीं होते. यह भाषा अपनी प्रमुख बोलियों अवधि,कन्नौजी,बुंदेली,बघेली,भोजपुरी,राजस्थानी,छत्तीसगढ़ी मालवी, नागपुरी मगही,मैथिली और कई देशज तथा विदेशज शब्दों से मिलकर बनी है.इसलिए हिंदी ग़ज़ल का स्वभाव हिंदी भाषा के स्वभाव से मिलता जुलता है. हिंदी ग़ज़ल महबूब की भाषा है,और एक महबूब की भाषा वही होती है जिसमें किसी भाषा की बंदिश नहीं होती.जो मिठास के साथ जवान से निकल जाए गुफ्तगू बन जाती है.

भाषा के स्तर पर भी ग़ज़ल ने कई दौर देखे हैं.ग़ज़ल जब अरबी में थी,फिर फारसी और उर्दू में आई तो उस समय तक यह बोलचाल की भाषा की ग़ज़ल नहीं थी. उसके अपने कारण भी थे.यह बादशाह के हरम में पली -बढ़ी,इसलिए वहां भाषाई ललित्य से ज्यादा भाषाई ज्ञान और कौशल पर ध्यान दिया गया.

उर्दू में ग़ालिब ने सबसे पहले ग़ज़ल को आम फ़हम शब्दों में लाने की कोशिश की.उनकी ग़ज़ल पहली बार सल्तनत से निकलकर आम लोगों

तक पहुंची, और शायद यही कारण है कि उर्दू ग़ज़ल में ग़ालिब का मुकाम आज भी काफी ज्यादा है. उन्होंने फारसी की चली आ रही ग़ज़ल को हिंदुस्तानी जबान में लाने की कोशिश की,और उन्हें नज़्म -उद -दौला जैसा खिताब भी मिला. कहने को ग़ालिब से पहले मीर की शायरी में भी ग़ज़ल को सहज बनाने का यत्न देखा जा सकता है, लेकिन ग़ालिब की शायरी उनसे ज्यादा आम लोगों से जुड़ती है.उनका एक बड़ा मशहूर शेर भी है-

हैं और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि ग़ालिब का है अंदाज़े -बयां और

असल में किसी कविता की भाषा उसके कथन और अंतर्वस्तु से बनती है. अज्ञेय कविता के गुण और भाषा के गुण को एक करके देखते थे. कविता की कुछ विधायें व्यंजनात्मक होती हैं तो कुछ में सपाट व्यायनी पाई जाती है.कभी-कभी कवि का मूड भी भाषा को प्रभावित करता है. एक समय में होने के बावजूद मुक्तिबोध,रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती और कुंवर नारायण की कविता के भवबोध में अंतर पाया जाता है.

हिंदी ग़ज़ल जहां आरंभ से ही भाषा को सरल और सहज करने की कोशिश में लगी हुई है,वहीं आधुनिक हिंदी कवि मानते हैं कि एक ही शब्द,मुहावरे प्रतीक और बिंब कविता में बार-बार प्रयोग होने से अपना अर्थ गाम्भीर्य खो देते हैं. सच तो यह है की बौद्धिक विमर्श वाली कविता किसी खास व्यक्ति तक सीमित हो कर रह जाती है.हिंदी कविता का इतिहास बताता है कि आम जनता के बीच जिस तरह दोहे और ग़ज़ल अपनी सहजता और सम्प्रेषणीयता के कारण लोकप्रिय हुए,वह स्थान अलग-अलग भाषा विधान और अमूर्तता के कारण काव्य की अन्य भाषा नहीं ले सकी.

हिंदी ग़ज़ल में जितने हिंदी के शब्द हैं,उतने ही अन्य भाषाओं के भी,या फिर यूं कहें कि हिंदी ग़ज़ल में जितना भाषा का सवाल है उससे ज्यादा अभिव्यंजना का सवाल है, पर ऐसा भी नहीं कि हिंदी के तमाम गज़लकार और समीक्षक इसके पैरोकार रहे हों. हिंदी ग़ज़ल का एक वर्ग ऐसा भी है जो हिंदी गजलों में शुद्ध हिंदी और संस्कृतनिष्ठ शब्दों में लिखने का हिमायती है. कुछ ग़ज़ल प्रधान पत्रिका के संपादक भी ऐसे हैं जिन्होंने हिंदी- संस्कृत शब्दों से युक्त शुद्ध ग़ज़ल भेजने का बोर्ड टांग रखा है. असल में ग़ज़ल लेखन एक स्वतः प्रक्रिया है. उसकी जबान खुद चलकर शायरी के पास आती है,जिसे किसी संश्लिष्ट भाषा में कैद नहीं किया जा सकता. एक कवि या शायर अपनी रचना में जिस विचार को रखता है,वह विचार भाषा के रूप में हमारे सामने आती है. हिंदी ग़ज़ल में कहन , सुख-दुख और तकलीफ में भी आम आदमी की है,तो भाषा में भी उन्हीं के अनुभव, चिंतन- मनन और संवेदनाओं से जुड़ी हुई है. संसद से सड़क तक के धूमिल जब कहते हैं-

अधजले शब्दों के ढेर में तुम/
क्या तलाश रहे हो

तो वह एक प्रकार से आमजन की भाषा में लौटने का आग्रह करते हैं.

हिंदी ग़ज़ल में उर्दू -हिंदी और लोक भाषा के शब्द ही नहीं हैं, बल्कि ऐसे अंग्रेजी शब्द भी हैं जो हमारी जवान में घुल- मिल गए हैं. ऐसे शेरों में जब अंग्रेजी के वर्ड आते हैं तो उससे शेर की खूबसूरती में और ज्यादा इजाफा हो जाता है. साथ

ही अशआर में पुख्तगी भी आती है,और लालित्य भी पैदा होता है. कुछ शेर देखें -

साल चढ़े ही छुट्टी लेकर बैठ गया
सूरज की अब्सेंट लगाई जाएगी- -अशोक अग्रवाल नूर

मेरे आने की तारीखें बराबर देखती होगी
वो हर शब सोने से पहले कैलेंडर देखी होगी
-ए. एफ नज़र

एक कश लेकर महज़ सिगरेट तुमने फेंक दी
और मैं बेचैन होकर देर तक जलता रहा
-विनय मिश्र

बहुत मिस्टेक होती जा रही है
मोहब्बत फेक होती जा रही है
-एम. ए तुराज़

हमारे कान कोई डस्टबिन हैं
जो इनमें फेंक दो बेकार बातें
-के पी अनमोल

वक्त के इस शार्पनर में जिंदगी छिलती रही
मैं बनाता ही रहा इस पेंसिल को नोकदार
-हरेराम समीप

अगर आप गौर करें तो इस अशआर को देखकर पाएंगे कि यहां एब्सेंट,कैलेंडर, सिगरेट,मिस्टेक,डस्टबिन जैसे शब्दों से शेर मज़ीद खूबसूरत और दिलकश बन गए हैं. उनकी जगह पर अगर दूसरे शब्द रखे जाते तो शायद यह इतने प्रभावपूर्ण नहीं बनते.

हिंदी भाषा की यही विशेषता है कि यह सगी मां किसी की भाषा से सौतेलापन नहीं रखती, कुछ और ऐसे शेर देखे जा सकते हैं-

खुशी से कांप रही थी यह उंगलियां इतनी
डिलीट हो गया एक शख्स सेव करते हुए
-फहीम बदायूंनी

मुझे डायवोर्स देकर तू भला क्यों
मेरी सेहत बराबर पूछता है
-हरेराम समीप

कब न जाने लौट कर आ जाए तू ये सोचकर
इस मकाने -दिल पर चस्पा आज तक टूलेट है
-नज़्म सुभाष

वायरस मोहब्बत का बढ़ रहा है तेजी से
इसके वास्ते भी एक वैक्सीन जरूरी है
-फौज़िया अख्तर

बस इस सबब से कि उसमें तुम्हारा अक्स रहा
मैं आईनों से कई डील करता रहता था
-शानुर रहमान साबरी

वह जो सारे शहर का गाइड है
उसको अपना पता नहीं मालूम
-बशीर बद्र

यह हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त अंग्रेजी के ऐसे शब्द हैं, जिसके माध्यम से सच्चाई की तीव्रता और गहराई को समझने में मदद मिली है.इसमें भाषा आरोपित नहीं बल्कि वास्तविक होकर हमारे सामने आई है. हिंदी ग़ज़ल में यह शब्द प्रयोग के तौर पर पहली बार प्रयुक्त हुए हैं , जिसे कविता के योग्य नहीं समझा गया था.नई कविता में जो कुछ अंग्रेजी के शब्द रिपीट होते हैं वह वास्तव में यौन क्रिया से संबंधित ऐसे शब्द हैं जिसे नग्नता छिपाने के लिए प्रयोग किया गया है,पर हिंदी ग़ज़ल में जहां प्रेम का वर्णन है,वहां भी खालिस पाकीज़गी और श्लीलता का होना लाज़िम है. यह ऐसी महबूबा है जिसे बेहियाई और उरयानियत नापसंद है.

ग़ज़ल में मौजूद यह अंग्रेजी भाषा के शब्द समकालीन जीवन की अवस्था की वास्तविकता को मजबूती से रखते हैं.यह ऐसे शब्द हैं जो ग़ज़ल को स्पष्ट करते हैं ना कि दुरूह बनाते हैं कुछ और शेर मुलाहिजा हों -

अन्न के मुद्दे पर हर भाषण में फोकस भी किया
किंतु पैने युद्ध के हथियार भी करते रहे
-ज़हीर कुरैशी

उसको तालीम मिली डैड- ममी के युग में
उसकी मां-बाप पुराने नहीं अच्छे लगते
-उर्मिलेश

हम तो सूरज है ठंड मुल्कों के
मूड आता है तब निकलते हैं
-विज्ञान व्रत

कहां तुम प्यार के पीछे पड़े हो
ये दुनिया फास्ट होती जा रही है
-ज़ियाउर रहमान जाफ़री

किताबें खोल कर बैठे हैं लेकिन
रिवीजन बस तुम्हारा हो रहा है
-प्रतीक शुक्ला

चाहो तो सारी रात रहो ऑनलाइन तुम
अब राब्ता नहीं है तेरे लास्ट सीन का
-राहुल कुमार

बाद मरने के मेरे तकिये के नीचे जो मिला
सब सुसाइड नोट समझे थे मेरी ताज़ा ग़ज़ल
-अशोक मिज़ाज

ग़ज़ल अपने इसी भाषाई समन्वय और लालित्य के कारण लोकप्रिय होती गई.आज मुशायरों का मतलब ही ग़ज़ल समझा जाने लगा है.एक समय था जब फिल्मों को सफल बनाने में ग़ज़ल की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका थी. असल में ग़ज़ल जज्बातों का बयान है, और अपने जज्बात को प्रस्तुत करने के लिए भाषा स्वाभाविक तौर पर सहजता से सामने आती है.

फ़िराक़ कहा करते थे कि कंठ से जो दर्द भरी आह निकलती है,वही ग़ज़ल है. भाषा के संबंध में यह बात बार-बार दोहराई गई है कि जो भाषा दूसरी भाषा के शब्दों को पचा पाती है,वही भाषा जिंदा रहती है. अंग्रेजी में हर वर्ष सैकड़ो नये शब्द जुड़ जाते हैं और शब्द सम्पदा को समृद्ध करते हैं.ग़ज़ल हमेशा खालिस ग़ज़ल बनकर हमारे सामने

आती है. ग़ज़ल की अपनी रचना प्रक्रिया और नखरे हैं.हर साल को ग़ज़ल के शिल्प और नखरे का ध्यान रखना होता है. यहां यह भी समझना जरूरी है कि ग़ज़ल सिर्फ़ बहर नहीं है उसमें कथ्य का होना भी उतना ही जरूरी है.

चंद्रसेन विराट और चांद मुंगेरी जैसे शायर हिंदी ग़ज़ल में हिंदी के जातीय शब्दों के हिमायती रहे हैं, पर दुष्यंत से लेकर आज के अधिकांश गज़लगो -अनिरुद्ध सिंहा,ज्ञान प्रकाश विवेक,डॉ.भावना,विज्ञान व्रत,कमलेश भट्ट कमल,नूर मोहम्मद नूर,वशिष्ठ अनूप आदि ग़ज़ल में उस भाषा के हिमायती रहे हैं जो जन सामान्य में रच बस गई है. यही कारण है कि हिंदी ग़ज़ल में उर्दू अरबी और फारसी शब्दों के साथ अंग्रेजी के शब्द भी इसी सरलता और संपूर्णता से देखे जा सकते हैं. चंद और शेर देखें -

टेबल पर हमने खत लिखकर छोड़ दिया
भारी मन से फिर अपना घर छोड़ दिया
-अनिरुद्ध सिन्हा

बहुत कंफ्यूज करती है हमेशा
सड़क के बीच ये उलझन की आदत
-डॉ. भावना

क्यों नहीं निज प्रांत में ही जॉब हो
आप क्या-क्या कर रहे हैं क्या कहें
-हरि नारायण सिंह हरि

कितना मुश्किल है अपने खो देना
हम इमेजिन भी कर नहीं सकते
आदर्शों को रहने दो
सिस्टम भ्रष्टाचारी है
-एस सी शर्मा

आओ गूगल पे चैट करते हैं
कौन चिट्ठी का इंतजार करे
-राजेंद्र तिवारी

कोका-कोला क्रेज बढ़ाये
दूध दही से तोबा तोबा
-अविनाश भारती

सुबह की भीड़ में अक्सर यह ट्रैफिक जाम होती है
अगर हम देर से पहुंचे हमारी बेबसी होगी
-विकास

सांस लेने पर भी जीएसटी लगे
वो मसौदा भी बनाया जा रहा
-डी एम मिश्र

जाहिर है हिंदी ग़ज़ल में अंग्रेजी के यह शब्द न मात्र इसकी तासीर बढ़ा देते हैं, बल्कि हमें अभिभूत भी करते हैं. एक ही शेर में गूगल और चिट्ठी शब्द तथा प्रांत और जॉब जैसे शब्द यह बताने के लिए काफी है कि हिंदी ग़ज़ल को ग़ज़ल से मतलब है वह भाषा की सीमा या वर्गीकरण के पीछे नहीं पड़ती.

हिंदी की कुछ ऐसी भी गजलें हैं,जिसमें प्रयोग के तौर पर ग़ज़ल के हर शेर में अंग्रेजी शब्दों का बखूबी निर्वाह हुआ है. हिंदी के युवा ग़ज़लकार

अभिषेक सिंह अपनी गजलों में बराबर प्रयोग कर रहे हैं. उनकी एक ग़ज़ल के तीन शेर देखें -

तमाम उम्र भला कौन ऐसे धड़केगा
हमारे दिल में खुदा का मशीन लगता है

करूं तो सॉल्व में कैसे पुराने मेथड से
हमारा इश्क का परचा नवीन लगता है

समय के कैमरे में कैद हो रहे हैं हम
ये जिंदगी किसी मूवी का सीन लगता है
-अभिषेक सिंह

इसके बरअक्स ऐसी भी गजलें मिलती हैं, जिसमें कुछ अप्रचलित अंग्रेजी के शब्द भी दिखते हैं,पर उसे भी पढ़ते हुए आनंद मैं कोई ख़लल पैदा नहीं होता -

अजब यही था कि दुनिया की रश में होता था
वह एक शख्स जो मेरे क्रश में होता था

तुम्हारी कुरबतें एम्यूज मुझको करती थीं
मैं उसके बाद मुसलसल ब्लश में होता था
-शानुर रहमान साबरी

पर जहां यह शब्द सहजता से आते हैं,वह शेर और अधिक प्रभावपूर्ण बन जाते हैं -

किचन की खिड़कियों का रुख बदल दो
मेरे बच्चे बहुत रोते हैं साहब
-तनवीर साकित

जो अक्सर खोये -खोये अपने ही पैकर में रहते हैं
नई तहज़ीब के बच्चे हैं कंप्यूटर में रहते हैं
-ए. एफ नज़र

खुशी के साथ ग्लोबल आपदाएं
भई खतरा तो हर व्यापार में है

आजकल जो उड़ रहे हैं रोज़ चार्टर प्लेन से
वे चुनावी रैलियों में फिर दलित हो जायेंगे
-राहुल शिवाय

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल जिस तरह से अपना सफर तय कर रही है,और आम लोगों की जबान पर मौजूद है इसका कारण यह है कि यहां इसकी बात उसी की जबान में है यह जवान किस भाषा की है प्रश्न यह नहीं है. प्रश्न यह है कि आम आदमी उस भाषा और अभिव्यक्ति से अपने आप को कितना जोड़ पाता है. हिंदी शेर में जहां भी अंग्रेजी,अरबी,फारसी उर्दू के शब्द इस्तेमाल हुए हैं उसने ग़ज़ल के सौंदर्य और संपदा में वृद्धि की है इसलिए ऐसे प्रयोग को स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए.

***

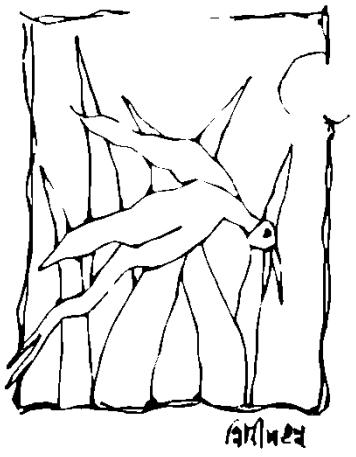

हिन्दी साहित्य और न्यू मीडिया

श्रीविलास सिंह से मेधा नैलवाल का साक्षात्कार

मेधा : हिंदी साहित्य और न्यू मीडिया के संबंध को आप किस तरह देखते हैं ?

श्रीविलास सिंह : किसी भी साहित्य को पाठकों तक पहुँचने हेतु किसी माध्यम की आवश्यकता होती है। न्यू मीडिया (संभवतः इससे तात्पर्य इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और सोशल मीडिया से है?) ने साहित्य को मंच और प्रिंट मीडिया के बाद यह नया और अधिक पहुँच वाला माध्यम प्रदान किया है। यह हिंदी साहित्य के लिए एक अवसर है विशेषतः युवाओं तक पहुँचने हेतु। क्योंकि न्यू मीडिया की पहुँच युवा वर्ग में गहरे तक है। यह एक सर्वसुलभ और जनतांत्रिक माध्यम है। हिंदी साहित्य ने भी आगे बढ़ कर इस माध्यम को गर्मजोशी से अपनाया है। जहाँ कविताकोश, गद्यकोश और हिंदवी इत्यादि वेब साइट्स पर हिंदी साहित्य का प्रचुर भंडार पठन पाठन हेतु उपलब्ध है वहीं समालोचन, अनुनाद, पहलीबार, इंद्रधनुष, अनुवाद संवाद इत्यादि अनेक पोर्टल्स ने निरंतर अच्छा साहित्य उपलब्ध करा कर निरंतर बंद होती जा रही पत्रिकाओं की कमी को पूरा किया है और दूर तक साहित्य की पहुँच बनायी है। फ़ेसबुक पर भी हिंदी कविता- कहानियों की प्रचुर उपलब्धता है। यद्यपि यहाँ गुणवत्ता का प्रश्न अक्सर उठता रहता है।

मेधा : सोशल मीडिया पर लेखकों की उपस्थिति से पाठकों की संख्या पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

श्रीविलास सिंह : इस संबंध में मेरे पास आँकड़े तो नहीं हैं लेकिन निश्चय ही सोशल मीडिया की नये लोगों और ख़ासकर युवा लोगों तक पहुँच होने के कारण लेखकों को इसका लाभ हुआ है। यद्यपि यह भी एक तथ्य है कि अभी भी हिंदी के अधिकांश वरिष्ठ लेखक सोशल मीडिया पर प्रभावी रूप से उपस्थित नहीं हैं।

मेधा : प्रचार एवं बिक्री के नए मंच न्यू मीडिया ने तैयार किए हैं। इस पर आपके क्या अनुभव हैं?

श्रीविलास सिंह : निश्चित रूप से अब नए मीडिया ने प्रचार और बिक्री के पूरे इको सिस्टम को बदल दिया है। साहित्य का प्रचार विज्ञापन अथवा अन्य तरीक़ों से बहुत कम प्रकाशक ही करते हैं। ऐसे में सोशल मीडिया एक बड़ा माध्यम है साहित्य के प्रचार का। अब जब साहित्यिक किताबों की दुकाने अधिकांशतः बंद हो चुकी हैं, अमेज़ोन, फ्लिपकार्ट इत्यादि ऑनलाइन बिक्री की साइट्स ने साहित्यिक पुस्तकों की घर बैठे उपलब्धता सुनिश्चित करा कर हिंदी साहित्य की बिक्री को निश्चय ही आसान और प्रभावी बनाया है।

मेधा : लेखक, प्रकाशक और पाठक किताब की इस आधारभूत संरचना में न्यू मीडिया ने नया क्या जोड़ा है ?

श्रीविलास सिंह : नए मीडिया ने जैसा कि पहले कहा पुस्तकों और साहित्य की उपलब्धता को पाठक के लिए आसान किया है और लेखक की पाठक तक पहुँच आसान बनायी है। प्रकाशन को भी नये मीडिया ने काफ़ी कुछ जनतांत्रिक कर कुछ ही प्रकाशकों के एकाधिकार को चुनौती दी है। नए प्रकाशक और ऑनलाइन प्रकाशन की सुविधा उपलब्ध हुई है। यद्यपि अभी गुणवत्ता पूर्ण पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए और प्रयत्न की आवश्यकता है।

मेधा : सोशल मीडिया पर आपकी उपस्थिति का आपकी रचनाशीलता पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

श्रीविलास सिंह: यदि आप अनुशासित ढंग से सोशल मीडिया का प्रयोग करें तो निश्चय ही इसका रचनात्मकता पर बेहतर प्रभाव पड़ता है। यदि सोशल मीडिया पर आपके मित्र अच्छी साहित्यिक अभिरुचि और समझ वाले हैं तो निरंतर और आसान संवाद के कारण रचनाशीलता की गुणवत्ता बढ़ती ही है। यह आप पर है कि आप सोशल मीडिया का उपयोग कैसे करते हैं।

मेधा : हिन्दी की ई-मैगज़ींस और महत्वपूर्ण ब्लॉग्स पर प्रकाशन के अपने अनुभव साझा करने की कृपा करें।

श्रीविलास सिंह: मेरी अनेक रचनायें हिंदी की बेहतरीन ई-पत्रिकाओं और ब्लॉग्स जैसे समालोचन, अनुनाद, समता मार्ग, पहलीबार, इंद्रधनुष, पोषम पा और अनुवाद संवाद इत्यादि पर प्रकाशित हुई हैं। अनुभव बहुत अच्छा रहा है। चूँकि यहाँ प्रकाशित सामग्री तत्काल पाठकों को उपलब्ध हो जाती है और उनकी प्रतिक्रिया भी तत्काल मिल जाती है, अतः यहाँ प्रकाशन में गुणवत्ता ही मुख्य मुद्दा होता है न कि किसी तरह की पक्षधरता या गुटबंदी, जिनसे आजकल प्रिंट माध्यम की कई पत्र पत्रिकाएँ ग्रस्त हैं।

***

(संवाद ई-मेल माध्यम से)

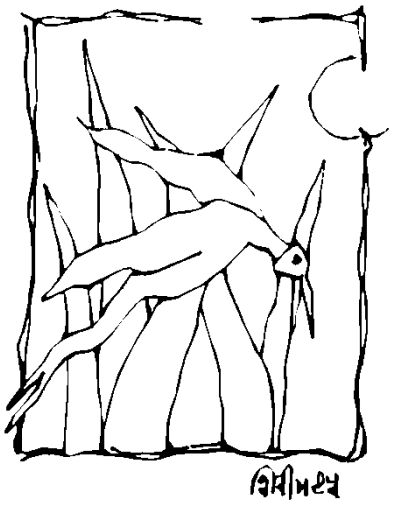

प्रकाशकीय विवरण

प्रकाशक
मेधा
medha.nailwal.anunad@gmail.com
medhanailwal@anunad.com

प्रकाशकीय पता
द्वारा प्रो. शिरीष मौर्य, वसुन्धरा ।।।, भगोतपुर तड़ियाल, पीरूमदारा, रामनगर, जिला- नैनीताल (उत्तराखंड) पिन- 244 715

मुख्य सम्पादक
शिरीष मौर्य
shirishmourya@anunad.com

सम्पादक
मेधा
medhanailwal@anunad.com

परामर्श मंडल
हरीशचन्द्र पाण्डे (संरक्षक)
harishchandrapandey@anunad.com
लीलाधर मंडलोई
leeladharmandloi@anunad.com
सुबोध शुक्ल
subodhshukla@anunad.com

अनुनाद के सितम्बर 2024 में प्रकाश्य अगले अंक के लिए रचनाएँ आमंत्रित हैं। आप कविता, कहानी, आलोचना/समीक्षा, कथेतर गद्य, समाज और संस्कृति जुड़े आलेख हमें medha.nailwal.anunad@gmail.com पर भेज सकते हैं।

रचनाएं यूनीकोड फॉन्ट में ही प्रेषित करें।